Chapter-4

-- चतुर्थ अध्याय

---:: साठोत्तरी हिन्दी कविता की भाषा ::---

कालरिज के अनुसार कविता अन्य कलाओं से भिन्न इसलिए है कि इसका माध्यम भाषा है।१ भाषा का विश्लेषण किए बगैर किसी भी युग की कविता के मर्म तक पहुंचना सम्भव नहीं है। काव्य-भाषा के प्रतिमान से अधिक तटस्थ और प्रामाणिक आलोचना का दूसरा प्रतिमान कदाचित सम्भव नहीं है। प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह के शब्दों में 'भाषा ही वह बैरोमीटर है, जिससे कवि की अनुभूति का दबाव नापा जा सकता है। कविता के संघटन में भाषा-प्रयोग की स्थिति केन्द्रीय है। अनुभूति के नाभिक (Nucleus) तक पहुंचने का निकटतम बिन्दु यही है।२ भाषा ही वह रास्ता है जिससे गुजरकर कविता को पाया जा सकता है। भाषा को इतना अधिक महत्वपूर्ण मान लेने के पीछे कविता के शिल्प को महत्व की प्रतिष्ठा की बात नहीं है बल्कि भाषा के द्वारा कविता की आन्तरिक शक्ति को पहचानना ही इसका उद्देश्य है। युवा कवि-समीक्षक प्रभातकुमार त्रिपाठी की यह धारणा बिल्कुल सही है कि भाषा के जरिये ही हम यह जान सकते हैं कि कवि-चेहरे को शब्दों ने गढ़ा है या अनुभव की रचनाकुलता ने।३ इस प्रकार कविता का महत्वपूर्ण होना कथ्य पर उतना निर्भर नहीं है जितना भाषा पर। साठोत्तरी कविता की काव्य- भाषा के विस्तृत अध्ययन के पीछे यही धारणा सक्रिय है।

---

(१) पाश्चात्य समीक्षा दर्शन-- जगदीशचन्द्र जैन- पृष्ठ- २२६ के आधार पर।

(२) आलोचना-- जनवरी- मार्च, १६७०-- वक्रोक्ति सिद्धान्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य --- पृष्ठ- ८१।

(३) वही - जुलाई-सितम्बर, १६६६ - युवा कविता की भाषा- पृष्ठ- ७६

क- भाषा की नयी भंगिमा

आज की मानव-स्थिति से क्रूर और निर्मम साक्षात्कार करने के बाद कवि को ऐसा लगता है कि इसके पहले की काव्य-भाषा आज के अनुभवों को लिपिबद्ध करने में असमर्थ है। इसमें संदेह नहीं कि नयी कविता की भाषा प्रारम्भ में परिवेश के अनुकूल तीव्र और जीवन्त थी, उसमें चौंकाने वाले मुहावरे नहीं के बराबर थे। लेकिन धीरे-धीरे नयी कविता की भाषा ठंडी, एकरस और निर्जीव हो चली। बदलती हुई काव्य-संवेदना को अभिव्यक्त करने की क्षमता उसमें न रही। 'भाषा की सार्थकता इस बात में है कि वह कवि की अपनी संवेदना के साथ कितनी जुड़ सकी है।'[१] अज्ञेय की सन् ६० के बाद की रचनाओं में अनुभव और भाषा के अन्तराल को साफ देखा जा सकता है और इसके आधार पर नयी कविता की भाषिक विसंगति को समझा जा सकता है। श्रीराम वर्मा ने स्वतंत्रता के बाद जिस काव्य - भाषा के स्थगित होने या नारों की ओट में खोने की चर्चा की है[२] वह नयी कविता के अन्तिम चरण की कविताओं पर विशेष रूप से लागू होती है। युवा कवियों ने भाषा की अक्षमता को जल्दी ही पकड़ लिया। केदारनाथ सिंह ने स्पष्ट कहा ---

---- भाषा जो मैं बोलना चाहता हूं
मेरी जिव्हा पर नहीं,
बल्कि दांतों के बीच की जगहों में सटी हुई है।[३]

---

(१) आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि- डा० रामदरश मिश्र-पृ०४१

(२) 'स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पूरी जाति स्वार्थलिप्सु, इच्छानुकूलित और प्रेम साधन विनष्ट होती गई, वैसे ही भाषा या तो स्थगित होती गई या नारों की ओट में खोती गई।'

--- पहचान ।५ --- पृष्ठ- ७

(३) कविताएं १९६४- सं० अजितकुमार-विश्वनाथ त्रिपाठी - फर्क नहीं पड़ता --- पृष्ठ- ४५-४६ ।

रघुवीर सहाय ने भी भाषा के रोमानी मुहावरे पर आक्रमण करते हुए घोषणा की कि भाषा कोरे वादों और झूठे वायदों से भ्रष्ट हो चुकी है।१ बाद के युवा कवियों - धूमिल, राजकमल चौधरी आदि ने जड़ और पुरानी भाषा की निरर्थकता को रेखांकित करते हुए एक नयी काव्य-भाषा के जन्म की मांग की। इस प्रकार यह आकस्मिक नहीं था कि एक पूरी पीढ़ी नयी काव्य-भाषा को तलाशने और गढ़ने में संलग्न रही। धूमिल का विचार था कि पुरानी और पेशेवर भाषा में किसी किस्म का अर्थ ढूंढना अब व्यर्थ है।२ भाषा की इस जड़ता और अपर्याप्तता की पहचान राजकमल चौधरी में भी बहुत प्रखर है। ३ युवा कवियों ने शब्द-कोषों

- -

(१) भाषा कोरे वादों से
वायदों से भ्रष्ट हो चुकी है सबकी
न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही

--- 'आत्म हत्या के विरुद्ध' -- फिल्म के बाद चीख -- पृष्ठ- ७४

(२) अब यहां कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों
और बैलमुत्ती इबारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है

--- संसद से सड़क तक - पृष्ठ-

(३) भाषा अब वेश्या है
सबकी बाहों में समायी हुई
सबके होठों पर बसी रहती है
उसके विवस्त्र अंगों में अब कोई अर्थ नहीं

--- कविता-७ - सं० भागीरथ भार्गव-- जयसिंह नीरज -- पृष्ठ- १६

में आग लगाने[१] पुरानी घोखेबाज भाषा को तोड़ने[२] और पुरानी भाषा को मिटा देने की जो उग्र घोषणाएं की हैं वे कम से कम इस बात का प्रमाण तो हैं ही कि वे एक ताजी और मौलिक काव्य-भाषा गढ़ने के लिए प्रतिबद्ध थे। चन्द्रकान्त देवताले अपने मृतग्रहं और लाचार ईमानदारी के साथ अपनी भाषा तलाशने की बात करते हैं क्योंकि आज का परिवेश व्यक्तिगत धरातल से लेकर सार्वजनिक धरातल तक बेहद गड़बड़ है। जगदीश चतुर्वेदी ने भी 'निषेध' की भूमिका में भयंकर अहसास करा रहे आज के भयावह और कुरूप परिवेश को शब्द देने के लिए एक नयी भाषा की तलाश की बात कही है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'भाषा के संकट की बात आज के कवि की एक ऐसी विकट समस्या है जिसका निराकरण उसे स्वयं करना है।'[३] युवा कविता

- -

(१) मैं शब्दकोषों में जा रहा हूं लगाने आग
याद रखना अपना नाम
जानी - पहचानी भोगी संज्ञाएं
ताकि नये शब्दकोष में न रह सकें
षड्यंत्रों के सूत्र, पर्याय
धोखा देने के लिए —

--- ज्ञानोदय दिसम्बर, १९६८ - अप्रसाद दीक्षित- पृ० २७ से उद्धृत

(२) कब तक बहकावे में पड़े रहकर
चढ़ाये रहोगे नकाब
कि पहचान संभव ही न हो
और आदमी भाषा के लिए
और भाषा आदमी के लिए
धोखा बनती जाए
कहीं से तो शुरू करना ही होगा
'चिकने' और 'गोल' शब्दों को तोड़ने का क्रम

--- इस हादसे में-- भाषा एक कार्यवाही--नरेन्द्र मोहन- पृष्ठ- ७२

(३) निषेध-- सं० जगदीश चतुर्वेदी- --- पृष्ठ- १४

में भाषा के उस रूप को रचने और गढ़ने की छटपटाहट है जो सहज सम्प्रेषण का माध्यम बन सके और इसका प्रत्येक शब्द एक स्वच्छन्द अर्थ का बोधक हो---

शब्द अब भी चाहता हूं
पर वह कि जो जाये वहाँ वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुंचे
चीजों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे[1]

साठोत्तरी कविता की भाषा का गढ़ाव दो दिशाओं में हुआ है। पहली दिशा अकवितावादियों की भाषा से सम्बद्ध है जब कि काव्य- भाषा का दूसरा पक्ष प्रतिबद्ध युवा कवियों द्वारा गढ़ा गया है। डा० परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन महत्वपूर्ण है कि जहां अकवितावादी 'चीखते अंगों 'की भाषा का सारा जोर 'यौन प्रसंगों 'की 'अतिरिक्त अभिव्यक्ति' पर लगा देता है वहीं प्रतिबद्ध कवि अपने आपसे बात करते हुए अपने आपसे प्रश्न पूछते हुए मन के सारे संदेहों को तोड़ते हुए समकालीन वास्तविकता के जटिल पहलुओं को व्यक्त करता है।२

(i) गद्यात्मकता का आग्रह ::-

निराला ने गद्य को जीवन-संग्राम की भाषा कहकर सम्बोधित किया था। नये कवि ने छन्द को तोड़कर गद्यात्मकता की ओर जो प्रयाण किया था, वह भी इस बात का प्रमाण था कि वह युग के जटिल, भयावह और कुरूप यथार्थ को कविता की लयात्मक शब्दावली में नहीं बांध पा रहा था। साठोत्तरी कविता में काव्य- भाषा ठेठ गद्य के आस-पास पहुंच गई है,

---

(१) आत्म हत्या के विरुद्ध -- रघुवीर सहाय - पृष्ठ- ३०
(२) नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - --- पृष्ठ- ३४

इससे जहां एक ओर कविताओं के कविता होने पर प्रश्नचिन्ह लग गया है वहीं दूसरी ओर काव्य-भाषा अधिक यथार्थ और जीवन्त बन सकी है। साठोत्तरी कविता की भाषा में शब्द अथवा अर्थ की लय बिल्कुल नहीं है, उसमें जीवन का संगीत अवश्य है। वस्तुत: आज साहित्यिक विधाएँ इतनी गड्ड-मड्ड होगई हैं कि उनको अलग करके देखना बड़ा कठिन हो गया है। गद्य और पद्य के बीच कम होती हुई दूरी यही संकेत देती है कि कवि हो या गद्यकार सभी अपनी समकालीन वास्तविकता को एक ही तरह से अभिव्यक्त कर रहे हैं। काव्य-भाषा में गद्यात्मकता का आग्रह अकवियों में विशेष रूप से मिलता है। सौमित्र मोहन, सतीश जमाली, जगदीश चतुर्वेदी, श्रीराम वर्मा आदि की बहुत सी कविताएँ गद्यात्मक टुकड़े मात्र हैं। उदाहरण के लिए सौमित्र मोहन की यह कविता---

"मेरे लिये मौसम, हवा, पानी और धूप नहीं है बल्कि शरीर के एक खास हिस्से में होने वाली हरकत है जिसका नाम शब्दकोषों में तो हो सकता है, कविता में नहीं क्यों कि तब अश्लीलता की यक्ष्मा होने लगती है हमारे 'पूज्यों' को और उनकी व्यस्तता बढ़ जाती है सफाई और स्वास्थ्य योजनाओं की तैयारी में।"१

आमतौर पर यह गद्यात्मकता युवाकवियों के काव्य का मूल्य घटाती ही है क्यों कि अधिकतर कवियों ने इसे विचारात्मक या कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के बजाय अपने मन की बकवास या भड़ास निकालने के लिए प्रयोग किया है। इसके फलस्वरूप बहुत सी कविताएँ युग की वास्तविकता का प्रामाणिक दस्तावेज बनने के बजाय एक फूहड़ और व्यक्तिगत रोजनामचा बनकर रह गई हैं। सतीश जमाली की कविता

- -

(१) निषेध -- कीर्तन - --- पृष्ठ- ७८

'शेष शताब्दी' गद्यात्मकता के अनुचित प्रयोग की गवाही देती है ---

'उसने पुल के ऊपर से चलती रेलगाड़ी पर लगायी छलांग, और कोकशास्त्र में छपे चित्रों को अपनी पीठ पर लादा, और तमाम जवान लड़कियों के कानों पर टांग दिये मरे हुए सांप और छातियों पर फुफकारते हुए बिच्छू और शर्म के मारे मुंह छिपाते हुए वेश्यालय में घुसकर किये दो कत्ल - - - - - - - - - - - - - - -'१

गद्यात्मकता के इस आग्रह ने कविता में सपाटबयानी को प्रेरित किया है और आज का कवि बगैर किसी लाग-लपेट के अपने अनुभवों को सीधे सम्प्रेषित करने में विश्वास रखता है ।

(ii) सपाटबयानी ::-

साठोत्तरी कविता में सपाटबयानी के पनपने के कई कारण बताये गये हैं । सपाटबयानी पद अशोक वाजपेयी का दिया हुआ है । उन्होंने सपाटबयानी की बढ़ती प्रवृत्ति का एक कारण युवा लेखकों के विचार, विरोध और ऊब या अबौद्धिकता को माना है । अशोक वाजपेयी का यह भी विचार है कि नयी कविता में प्रतीकों और बिम्बों की भरमार की प्रतिक्रिया ने भी सपाटबयानी को प्रोत्साहित किया ।२ डा० नामवर सिंह ने भी अशोक वाजपेयी का समर्थन करते हुए बिम्ब-विधान के विरोध को ही सपाटबयानी के जन्म का प्रमुख कारण सिद्ध किया है ।

- -

(१) अकविता-७ --- पृष्ठ- १४

(२) 'युवा लेखकों के विचार - विरोध और ऊब या अबौद्धिकता का एक और पक्ष कविता में इधर बढ़ी सपाटबयानी से भी जुड़ा हुआ है । नई कविता में बिम्बों और प्रतीकों की ऐसी भरमार होगई थी कि कविता शब्दाडम्बर होने लगी ।'

--- फिलहाल -- --- पृष्ठ- १३

नामवरसिंह के शब्दों में "छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के प्रारम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब - विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा —— समस्या परिस्थितियों के सीधे `साक्षात्कार` की थी ; प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था । - - - - - इस मुश्किल ने क्रमश: उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे अशोक वाजपेयी ने - - - `सपाटबयानी` कहा है ।"[1]

घूमिल, कमलेश, लीलाधर जगूड़ी, ऋतुराज, वेणुगोपाल, श्रीकान्त वर्मा आदि बहुत से कवियों ने सपाटबयानी का सही और सार्थक प्रयोग किया है। उन्होंने सपाटबयानी के जरिये कभी राजनीतिक भ्रष्टता[2] को रेखांकित किया है तो कभी संघर्ष का आव्हान मुखर हुआ है।[3] सपाटबयानी की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि उसने जीवन के महत्वपूर्ण और गम्भीर सत्य को बड़ी सरलता से अभिव्यक्त कर दिया है। घूमिल और लीलाधर जगूड़ी की निम्नलिखित पंक्तियां सपाटबयानी के जरिये एक व्यापक सत्य को उजागर करती हैं ---

यहां जनता एक गाड़ी है

- -

(१) कविता के नये प्रतिमान -`काव्य-बिम्ब और सपाटबयानी` - पृ०१३३-३४

(२) पिछले साल जिस सेठ पर मुकदमा चलाया
उससे `इलेक्शन फन्ड` में चन्दा के लिए
मिनिस्टर साहब चार बार चक्कर काट चुके हैं

--- एक उठाहुआ हाथ -- परिदृश्य- १९६७, भारतभूषण अग्रवाल- पृ० ४८

(३) चट्टान की तरह कठोर है वर्तमान कर सको तो उसके सीने पर
हस्ताक्षर करो यह
रजाई के अन्दर घुसकर बैठना कोई मकसद नहीं रखता

--- विचार कविता की भूमिका--`कविता में कविता के लिए`
-- राजकुमार कुंभज --   पृष्ठ-१३८

एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'गया' है
और भूख में
तनी हुई मुट्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है ।१

'देखो ! इस देश की हर सड़क
तिजोरी तक जाती है
और तुम्हारे लिए
पोस्टकार्ड की कीमत बढ़ जाती है ।'२

धूमिल के काव्य-संकलन 'संसद से सड़क तक' की समीक्षा करते हुए गिरजाकुमार माथुर ने उनकी भाषा-शैली की भंगिमा को सपाटबयानी कहने पर आपत्ति प्रकट की है। वे वस्तुपरक बिम्बों और सीधी शैली से लैस धूमिल की भाषा में सपाटबयानी की अपेक्षा 'साफगोई' अधिक पाते हैं।३ वास्तव में गिरजाकुमार माथुर ने जिसे 'साफगोई' कहा है वह सपाटबयानी का ही एक अनिवार्य अंग है। 'साफगोई' सपाटबयानी की एक विशेषता है। सहजता, सांकेतिकता और स्वाभाविकता अन्य विशेषताएँ हैं। धूमिल की कविता में ये तमाम विशेषताएँ एक साथमिलती हैं ---

एक आदमी रोटी बेलता है

- -

(१) आलोचना -- जनवरी - मार्च, १९६८- पटकथा - पृष्ठ- १९ ।

(२) नाटक जारी है --- इस व्यवस्था में --- पृष्ठ- ४८ ।

(३) 'लेकिन धूमिल ने जिन वस्तुपरक बिम्बों और सीधी शैली का प्रयोग किया है और उसके माध्यम से विडम्बना को व्यक्त किया है उसे 'सपाटबयानी' की बजाय 'साफगोई' कहना ज्यादा उचित है।'
--- हिन्दी वार्षिकी १९७२-- कविता १९७२ --- पृष्ठ- ६

दूसरा आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है न खाता है
रोटी से खिलवाड़ करता है
मैं पूछता हूं वह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है ।१

सपाटबयानी एक रूढ़ि या खतरा बनकर भी साठोत्तरी कविता में प्रस्तुत हो गई है । अशोक वाजपेयी ने सपाटबयानी के द्विआयामीय खतरे से सावधान किया है । उनके अनुसार सपाटबयानी की अति एक ओर अबौद्धिकता को जन्म देती है दूसरी ओर कविता में शिल्प की धारणा का भी अच्छा - खासा अवमूल्यन हुआ है ।२ वास्तव में ठेठ सपाटबयानी कविता में एक हद तक ही प्रभाव पैदा कर पाती है । युवा कवियों ने इस तथ्य को नजरंदाज करते हुए सीधी सपाटबयानी का परिचय अपनी ढेर सी कविताओं में दिया है लेकिन जैसी कि नवलकिशोर की धारणा है "सीधी सपाटबयानी में अक्सर सचाई नहीं होती क्यों कि उसकी भाषा बहुत जल्दी भोंठी पड़ जाती है ।"३ ऐसी स्थिति में उग्र और आक्रामक वक्तव्यों के बावजूद कविता हल्की रह जाती है । अकवियों की कवितायें इस प्रकार की असफलताओं का अच्छा उदाहरण है । ऐसी रचनाओं में विचार, संकेत या अनुभव न होकर केवल भाषा के साथ मनमाना खिलवाड़ होता है । ऐसा नहीं है कि युवा कवियों को इस विडम्बना का बोध न हो ।४

- -

(१) दिनमान -- २३ फरवरी, १९७३ --- पृष्ठ- १२

(२) फिलहाल - --- पृष्ठ- १३

(३) विचार कविता की भूमिका- --- पृष्ठ- ८८

(४) और पाता हूं
भाषा के असाध्य जंगल में विचारों की भूमि
आज भी परती है

--- राष्ट्रवाणी विशेषांक- १९६८ -- देवेन्द्र कुमार - पृष्ठ- २३

जब कवि के अनुभव और अभिव्यंजना के बीच फांक सी रह जाती है और कविता प्रामाणिक वक्तव्य नहीं लगती तो इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि भाषा - व्यवस्था गड़बड़ है। अगर धूमिल, राजकमल चौधरी कमलेश, अशोक वाजपेयी, कैलाश वाजपेयी, ज्ञानेन्द्रपति, मनमोहन, रघुवीर सहाय, आदि कवियों की कविता जीवन की बुनियादी सचाई से जुड़ने का आभास देती है तो इसका बहुत कुछ श्रेय उनकी चुस्त पैनी और आक्रामक भाषा को जाता है। इन कवियों ने भाषा को एक ऐसे तेज उस्तरे की तरह स्तेमाल किया है जो वास्तविकता पर जमी कुंठ की पर्तों को बेरहमी के साथ छील देती है। सपाटबयानी इस भाषा की तेज धार होती है। अगर परिवेश का सही बोध और प्रासंगिक तथा 'जेनुइन' प्रश्नों पर सही तरीके से सोच-विचार भी इससे जुड़ जाता है तो भाषा और भी धारदार हो उठती है। राजकमल चौधरी, धूमिल और कैलाश वाजपेयी की निम्नलिखित पंक्तियां सही सार्थक और विचारोत्तेजक सपाटबयानी का प्रमाण जुटाती हैं ---

१- देह की राजनीति से विकट सन्निकट और कोई राजनीति नहीं है संजय
अन्न और अफीम की राजनीति यहीं शुरू होती है
जन्म लेता है यहीं मृग-मारीच[1]

२- हर ईमान का एक चोर दरवाजा होता है
जो सण्डास की बगल में खुलता है।[2]

३- लीडर और कुत्ते, सबके सब बोलने के मरीज हैं
सब के सब एक - दूसरे की आंखों में बदतमीज हैं।[3]

- -

(१) मुक्ति प्रसंग - 'राजकमल चौधरी' -- पृष्ठ- १८
(२) संसद से सड़क तक - 'धूमिल' -- पृष्ठ- ८३
(३) संक्रान्त - कैलाश वाजपेयी -- पृष्ठ- ७१

इस प्रकार स्पष्ट है कि सपाटबयानी साठोत्तरी कविता की एक भाषिक उपलब्धि है। छन्द टूट जाने के बाद दुरूह और अजीब प्रतीकों और बिम्बों से बोझिल होकर जो कविता जन साधारण से बहुत दूर चली गई थी वह सपाटबयानी के चलते फिर जनसाधारण के लिए बोधगम्य हो गई।१ धूमिल ने कविता को शब्दों की अदालत में मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का हलफनामा कहा है। जाहिर है कि यह हलफनामा लाक्षणिक या घुमावदार न होकर ठेठ और सपाट हो गया है।

(iii) भाषायी सामान्यीकरण और रैटारिक :-

सपाटबयानी कुछ कवियों में निरा वक्तव्य या रैटारिक बनकर रह गई है। ऐसे स्थलों पर कवि की मुद्रा एक भाषण देने वाले या निरर्थक वक्तव्य देने वाले व्यक्ति की हो गई है। धूमिल का यह वक्तव्य काफी हद तक सही है कि 'एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है' लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कविता केवल वक्तव्य मात्र है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में --'साठोत्तरी पीढ़ी को भ्रम है कि सिर्फ वक्तव्यपरक हो जाने से काम चल जाएगा। लेकिन वक्तव्यता एक अन्य भ्रम की सृष्टि करती है।'२ वक्तव्यों की भरमार के फलस्वरूप या तो कविता में बड़बोलापन आ जाता है या निरर्थक स्फीति और अनावश्यक विस्तार आ जाता है। अधिकतर लम्बी कविताएँ चाहे धूमिल की 'पटकथा' हो चाहे मणिमधुकर का 'खण्ड - खण्ड - पाखण्ड पर्व' हो सब में यही बात देखने को मिलती है। शब्दों की फिजूल खर्ची के साथ-साथ खुद को दोहराने का खतरा वक्तव्यनुमा कविता में बराबर बना

(१) 'उसकी सपाटता और गद्यात्मक अभिव्यक्ति कविता को जटिलता, दुरूहता और उलझावों से बचाकर जनता के बिल्कुल समीप खींच लायी है।'
--- अभिव्यक्ति-- सं० बालकृष्ण राव, 'गोविन्द रजनीश' -- पृष्ठ- १५६

(२) जलते और उबलते प्रश्न-- -- पृष्ठ- २०४

रहता है। मणिमधुकर की निम्नलिखित पंक्तियों में ब्यौरेबाजी भर है कविता नाम मात्र को भी नहीं---

बाजार, कलेण्डर, पेड़, मशीन, अदालत, खप्पर, विस्तर
कोठरी, प्रशंसा, निद्रा, यात्रा, मेज, चौखट, सितार, अल्बम,
आरा, उदयपुर, मास्को, शिलालेख, यातना, सौरमंडल,
तुम मुझे कहीं भी अनुमान सकते हो - - - - - १

युवा कविता में जगह - जगह सामान्यीकरण उभरते हैं और वे कवितानुमा वक्तव्य का एक अनिवार्य अंग बनकर आए हैं। हालांकि इनमें निहित विचार-तत्व कविताओं को मूल्यवान बनाता है लेकिन जब इनकी अति होने लगती है तब लगता है कि कवि मसीहाई या पैगम्बराना मुद्रा अख्त्यार कर रहा है।२ इस प्रकार के सामान्यीकरण साठोत्तरी कविता की एक रूढ़ि बन गए हैं और इनका महत्त्व अज्ञेय की नैतिक सूक्तियों से अधिक नहीं है। वैसे इन चालू वक्तव्यों और चौंकाने वाले बयानों के बीच कुछ सार्थक प्रासंगिक और सपाट कथन अपनी ताजगी और मौलिकता के चलते सहज ही ध्यान आकर्षित कर लेते हैं---

१- याद रखो,

- -

(१) खण्ड-खण्ड पाखण्ड-पर्व

(२) अ- जातीय जमीन पर
देशवासी हो जाना
प्रजातंत्र का मसविदा है
--- नाटक जारी है -- लीलाधर जगूड़ी - पृष्ठ-

ब- चूहा। एक आसान किस्त है
आदमियत का कर्ज पटने के लिए (विनोद कुमार शुक्ल)

स- अगर कोई जीने की शर्त है तो
यही कि आदमी सड़क
का कुत्ता बन जाय या बीबी का
गुलाम या स्यर इण्डिया
का विज्ञापन
--- कविताएँ कविता के बाहर - सौमित्र मोहन - पृष्ठ-

कभी अकेले में मुक्ति न मिलती,
यदि वह है तो सबके ही साथ है।१

२- आज कल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है २

३- नदियाँ कहीं भी नागरिक नहीं होतीं
और पानी से ज्यादा कठोर और काटने वाला
कोई दूसरा औजार नहीं होता ३

प्राय: यह समझा और कहा जाता है कि साठोत्तरी कविता की भाषा मुक्तिबोध की काव्य-भाषा का विकास है। वास्तविकता यह है कि युवा-कविता ने मुक्तिबोध के तत्समबहुल और बहुत कुछ क्लिष्ट काव्य-भाषा के स्थान पर एक नया ही मुहावरा विकसित किया है। गोविन्द-द्विवेदी के शब्दों में 'युवा कविता ने भाषा को नया संस्कार और ताजगी दी जो अपनी सम्पूर्ण सार्थकता में समकालीन आदमी की संवेदना को अभिव्यक्ति करने की ताकत रखती है।'४ चूंकि जीवन स्थितियां बदली हैं और उनके अनुरूप काव्य की 'वस्तु' परिवर्तित हुई है अत: भाषा का बदलाव एक अनिवार्य मांग बन जाती है। युवा कवियों ने स्वीकार भी किया है कि न केवल उनकी भाषा अपितु बिम्ब प्रतीक आदि भी पुरानी परम्परा से

- -

(१) चांद का मुंह टेढ़ा है - 'चम्बल की घाटी' -- मुक्तिबोध- पृष्ठ- २४२
(२) संसद से सड़क तक -- 'मोचीराम' -- धूमिल पृष्ठ- ४१
(३) इस यात्रा में - 'पेड़' - लीलाधर जगूड़ी पृष्ठ- ४४
(४) नई कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य- पृष्ठ- १३

बिल्कुल अलग है।[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त पुरानी परम्परा में मुक्तिबोध भी शामिल है। `ब्रह्मराक्षस `एक अरूपशून्य के प्रति` आदि रचनाओं में मुक्तिबोध की भाषा आभिजात्य से मुक्त नहीं है---

नगर का अमूर्त सा तिलिस्मी आभालोक
शोषण की सभ्यता का राक्षसी दुर्ग-रूप
यथार्थ की भित्ति पर
समुद्घाटित करता है।[2]

ख- साठोत्तरी कवियों का शब्द-संसार ::-

साठोत्तरी कविता की भाषा में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी के अतिरिक्त बहुत सी भारतीय भाषाओं (प्रान्तीय भाषा, आंचलिक बोलियों) के शब्द भी उपलब्ध होते हैं। कहना न होगा कि साठोत्तरी कविता का शब्द-संसार बहुत व्यापक है। साठोत्तरी कविता के शब्द-संसार में बहुत सी काव्य-संज्ञाएं पहली बार प्रवेश कर पाई हैं। धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, भूगोल, समाजशास्त्र, विज्ञान आदि सभी ने साठोत्तरी कविता के शब्द-संसार को समृद्ध किया है। साठोत्तरी कविता में शाब्दिक-स्वरों की दृष्टि से भाषा दो तरह की है। एक ओर अकविता सम्प्रदाय की भाषा आश्चर्य रूप से संस्कृत-निष्ठ है। दूसरी ओर प्रगतिशील कवियों की भाषा एक विशेष प्रकार की रचनात्मक उत्तेजना से लैस है तथा साधारण बोल-चाल के बहुत पास पड़ती है। भाषा को तोड़ना - मरोड़ना अकवियों को प्रिय है

- -

(१) `इन्हीं स्थितियों के अनुरूप हमारी भाषा, हमारे प्रतीक, हमारी बिम्ब-योजना सभी कुछ उस पुरानी परम्परा से अलग दिखाई देते हैं। हमारी उपलब्धियां उनके भाव - बोध के स्तर से भिन्न हैं।`

--- प्रारंभ -- सं० जगदीश चतुर्वेदी -- भूमिका --

(२) चांद का मुंह टेढ़ा है -- मुझे याद आते हैं -- पृष्ठ- ८०

लेकिन इस तोड़-मरोड़ के पीछे कोई सार्थक और संगत दृष्टि नहीं है। डा० परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में 'भाषा को एक बार अधिक जीवन्त और सार्थक बनाने के लिए तोड़ना तो जरूरी है पर यह भी उतना ही जरूरी है कि इस तोड़ने के पीछे यथास्थिति को बदलने के बुनियादी लगाव हों।'[१] अकवियों में यथास्थिति बदलने का बुनियादी लगाव न होकर शाब्दिक खिलवाड़ या अपनी कुत्सित और भदेस भावनाओं को आरोपित करने की प्रवृत्ति बहुत साफ है। मुद्राराक्षस की निम्नलिखित कविता से अकवियों के इरादों को अच्छी तरह समझा जा सकता है ---

पपृधा: बदति लाप्रियायिता
धघहा प्रज्व कामाद्रा
चिवयतु चाकनतु प्रबोदयामा
इन वण्वे विशि भोगालिलिंगम ।[२]

अकविता के प्रथम अंक से ही इस प्रकार भाषा के साथ बलात्कार की प्रवृत्ति मिलती है। अच्छे-खासे प्रगतिशील समझे जाने वाले राजीव सक्सेना ने भी इस प्रकार की कविता लिखकर अपनी प्रतिभा और काव्य - क्षमता का दुरुपयोग किया है।[३] डा० ललित शुक्ल ने इस प्रकार की कविताओं की भाषा के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि न तो यह हिन्दी है ब न संस्कृत। उनके अनुसार यह सब अंग्रेजी की नकल मात्र थी। हिन्दी काव्य में यह रोग अब कुछ कम हुआ है, अंग्रेजी में अब भी चल रहा है।[४]

- -

(१) राष्ट्रवाणी विशेषांक - १६६८, 'सातवें दशक की कविता में भाषा'-पृ०२४

(२) अकविता-१ -- पृ०

(३) अज्ञेयम् सर्वदुमेश्वरम् रोग्सवीराय पोण्डलीयटे
घर्मखाते च अज्ञान पीठे हालरीठे ढ़ोल बजावते
अहो रूपम् वा अहोध्वन्यम् कान्ता शोकम् दुम दबे
सप्तके प्रार्थयि पारदारे जयति जय जय गुट गुट घुटे --अकविता-१-पृ० १३

(४) नया काव्य नये मूल्य - साठोत्तरी कविता - पृष्ठ-२६०

ऐसे ऊलजलूल भाषा-प्रयोगों से कविता में दुरूहता और बढ़ी है। इस प्रकार की अपनी कविताओं को अकवि स्वयं ही समझ सकते हैं। अकवियों की भाषा ज्यादातर किताबी है। सौमित्र मोहन और श्याम परमार के कुछ रोचक प्रयोगों को अपवाद के रूप में छोड़ दें तो अकवियों की काव्य-भाषा निपट एकायामी है और उसमें किसी सार्थक ढंग की रचनात्मक उत्तेजना बिल्कुल भी नहीं है : अनेक भाववाचक संज्ञाओं का बार-बार असहाय आलम्बन कविताओं में ठोसपन की कमी ही नहीं अनुभूति की अनुपस्थिति भी उजागर करता है।[१] यद्यपि अकवियों ने अपनी भाषा को आक्रामक और तेज तर्रार दिखाने का प्रयास किया है और अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्दों को कविता में रखा भी है।[२] उसके बावजूद उनकी भाषा परिवेश की सच्चाइयों का बेबाक और निस्संग चित्रण नहीं करपाती। शब्दों की समृद्धि की दृष्टि से अकवियों में सौमित्र मोहन और श्यामपरमार विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों की भाषा अनुभवों से जुड़ी होने तथा अभिव्यक्ति के लिए 'वस्तु' के अनुकूल भाषा गढ़ने की छटपटाहट की गवाही देती है ---

दिन हो या रात
थोड़े बहुत अन्तर से
कुछ क्षण आते हैं
        जब मैं भीड़ होता हूं
यही क्षण होते हैं
जहां मुझ में
        अनुशासन टूटता है[3]

---

(१) फिलहाल - अशोक वाजपेयी -- -- पृष्ठ- ६७

(२) जीनों पर मिलते हैं लिपिस्टकों के ट्यूब
फ्रेन्च लेदर के पैकिट
और शक्ति देने वाली गोलियों के कवर
तमाम देश कैद है लिजलिजी चादर में
नींद की गोलियां सबसे ज्यादा बिकती हैं
--- विजप - आत्मरति - जगदीश चतुर्वेदी --- पृष्ठ- ५४

(३) कविताएं कविता के बाहर -- 'श्याम परमार' --- पृष्ठ- ५३

अकवियों की भाषा जहाँ समकालीन वास्तविकता को तीखेपन के साथ अभिव्यक्त नहीं कर पाती वहीं धूमिल, कमलेश, विष्णु खरे, वेणुगोपाल, सव्यसाची, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय, बलदेववंशी, कैलाश वाजपेयी आदि की भाषा व्यर्थ के शब्दाडम्बर से दूर और ताजगी से भरपूर एक जीवित भाषा है। इस भाषा में संस्कृत-निष्ठता का आग्रह निरन्तर कम होता गया है और भाषा को साधारण बोलचाल के शब्दों से समृद्ध किया गया है। साठोत्तरी कवि तत्सम शब्दावली का विरोध करता है। धूमिल के शब्दों में कहा जाय तो तत्सम शब्द उसके लिए किसी अजनबी से कम नहीं।[१] तत्सम को इस अर्थ में प्रयुक्त करना जैसा कि डा० विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है, गहरे लोकवादी कवि का ही हिस्सा है।[२] लोक भाषा की ओर प्रयाण के पीछे साठोत्तरी कविता का तत्सम-विरोध इस तर्क पर भी आधारित है कि बहुत से परम्परागत शब्द या तो पुरानी हवेलियों की तरह बेकार हो गए हैं या हिलते दांतों की तरह अपनी उपयोगिता गवां बैठे हैं---

कितने ही शब्द
लाशों की तरह
बेजान हो गये हैं
या हैं भी तो
पुरानी हवेलियों की तरह
ढांचा भर शेष
या हिलते दांतों की भांति बेकार[३]

---

(१) लिपियों के अंधे कुहराम में
देखते ही देखते
एक परिचित चेहरा
किसी तत्सम शब्द की तरह अपरिचित
होगया है
--- संसद से सड़क तक -- भाषा की रात - 'धूमिल' -- पृष्ठ- ६६

(२) आलोचना - अप्रैल- जून, १६७५-- भाषा की रात से जूझता कवि: धूमिल -- पृष्ठ- ५६

(३) सहज कविता - सं० रवीन्द्र भ्रमर 'अजित-शुकदेव' -- पृष्ठ- ३६

विभिन्न कविता सम्प्रदायों से मिलकर निर्मित हुई साठोत्तरी कविता का शब्द-संसार बहुत व्यापक है। हिन्दी के तत्सम (संस्कृत-निष्ठ)[1] देशज और तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेजी[2] और उर्दू फारसी के बहुत से

- -

(१) असंपृक्त, अनिर्णीत, आवर्त, आत्मचेतस, आवेशालिंगन, उद्भ्रान्त, उच्छिष्ट, ऊर्जस्वल, औदुम्बर, कण्टकित, तजोदमास, तितिक्षा, दिग्भ्रमित, द्विधाग्रस्त, दुर्निवार, देदीप्यमान, निवर्ति, निक्षिप्त, निर्विकल्प, पर्यवसित, प्रलम्बिता, प्रत्यूष, प्रच्छन्न, भव्याकृति, मंत्रोच्चार, महानिष्क्रमण, रक्तांकित, योषा, विषण्णा, विविक्ताकृतियां, विश्वचेतस्, विदीर्ण, सान्त्वनार्थ, स्वर्णाभ, स्तरावरण, स्वेदायित, सुमुत्तगा, स्थितिप्रज्ञ, स्खलित, शब्दाभिव्यक्ति, श्वेताम्बर, शैलांचल, हुंकृति, हृदयानुभव, ऋणात्मक आदि।

(२) अण्डरवीयर, अम्पायर, अलार्म, आर्कलैम्प, आर्टिस्ट, आक्टोपस, आपरेशन-टेबुल, आइसक्रीम, आनरेरी, इम्यूनिटी, इण्टरव्यू, एन्टीबायोटिक, एम्बुलेंस, एसोशियेटेड, एवन, ओवरब्रिज, कार, कूलर, क्यू, काफीहाउस, कैन्वस, किलोमीटर, कैम्पस, कलेण्डर, कामरेड, कल्चर, कन्फ्यूज्ड, कालिंग, कारबन, कैरियर, कन्सलटेंट, गाऊन, गैंग्रीन, गैलरी, ग्रैण्ड ट्रंक रोड़, जुग्राफिया, ट्रांसमीटर, टेलीफोन, टायर, टेप, टेम्परेचर चार्ट, टाइम बंब, ट्रांसपोर्ट, ट्रांजिस्टर, ड्राइंगरूम, डिजाइन, डाइगनोसिस, डेक्स, डिक्की, थर्मामीटर, थर्ड क्लास, न्यूजप्रिंण्ट, पार्टी, पोस्टर, पाकेट, पोस्टकार्ड, प्लेटफार्म, प्लेबैक, पेपरवेट, पैकेट, प्लास्टर, पैट्रोल, पोस्टमार्टम, प्रोविडेण्टफण्ड, प्रोग्रैम, प्रेस, पासपोर्ट, पोर्टफोलियो, पोलियो, पिरामिड, फाइल, फायर ब्रिगेड, फाइनेंशियल, फिल्म, फ्रिज, फुटपाथ, फ्रस्ट्रेशन, फ्यूज, फ्रण्ट, बीट, बीटनिक, बिजनेस, बसस्टैण्ड, बैरिस्टर, मजिस्ट्रेट, माइ, मेडम, मैरिजपार्टी, यूनिवर्सिटी, रेफ्रीजेरटर, लेवियेशन, लीडर, लेमिंग, लैटरबाक्स, वाण्टेड, विटेमिन, विण्डोशापिंग, शार्टवेव, सर्चलाइट, साइरन, सेक्स, स्टीमर, हसबैण्ड,

शब्दों [१] की बहुत बड़ी संख्या इसमें मिलती है। अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग प्राय: महानगर के जीवन के संदर्भ में हुआ है। उर्दू शब्दावली की प्रचुरता यह सिद्ध करती है कि साठोत्तरी कवि कविता की भाषा को जन-जीवन के काफी निकट लाना चाहता है।

जिस प्रकार साठोत्तरी कविता का वस्तु-जगत बहुत विराट है और उसमें जीवन के बहुत से नये और काव्य के लिए अनुपयुक्त समझे जाने वाले प्रसंग सम्मिलित हो गए हैं उसी तरह साठोत्तरी कविता की भाषा अनेक स्रोतों से ली गई है और उसमें कविता के क्षेत्र में अस्पृश्य समझे जाने वाले शब्द भी

- -

(१) अक्ल, अफसर, अखबार, अजीब, मजूबा, अमल, अजीज, आमफहम, आगाह, आजादी, आवाज, आमदोरफ्त, इश्तहार, इमारत, इबादत, इन्तजार, इन्कार, इत्तफाक, इशारा, इन्साफ, इल्जाम, इरादा, ईजाद, उजाला, औजार, कब्र, कदम, कवायद, करीब, कशमकश, कफन। काफिले, किफायत, कैदी, कोशिश, खयाल, खबर, खातिर, खामोश, खुदगरज, खुशी, खुशबू, खुलासा, खैर, खैरियत, खौफ, गफलत, गरीब, गलती, गलतफहमी, गमगीन, गनीमत, गुनाह, गुनाहगार, गुजर, गुलामी, गुजरना, गुमसुम, गुमराह, गैरत, जमाने, जुल्म, जलूस, जमीन, जमात, जख्म, जरूरत, जलील, जायका, जद्दोजहद, ज्यादती, जालिम, जिन्दगी, जिस्म, जेल, तरीका, तवारीख, तकाजे, तहखाने, तारीफ, ताज्जुब, तेज, दरिया, दफनाया, दगा, दफ्तर, दराज, दवाफरोश, दस्तूर, दिमाग, दागी, नकल, नशा, नजर, नकाब, नफरत, नक्श, नतीजा, निगाह, परिन्दे, पोशाक, फजीहत, फर्क, फासला, फारिग, फातिहा, फिजूल, फीता, बदमाश, बदतमीज, बदमिजाज, बहुक्म, बेशुमार, बेतरतीब, बेनकाब, बेगुनाह, महसूस, माफी, मुसीबत, मुफलिसी, मुहब्बत, मुश्किल, मेजबान, मेहरबानी, मौत, मौके, मजाक, मुलाकात, मरीज, मर्सिया, मजमा, मटमूल, मजार, मिजाजपुरसी, मुतमइन, मुफीद, मुबारक, मेज मंसूबा, रौब, रोजमर्रा, रकाबी, शफा, शातिर, शिकायत, सलाम, साजिश, सलीका, सबक, सिफारिश, सुराग, हजर, हिदायतें, हुक्म, होश, वफादारी

उदारता पूर्वक स्थान पाते गए हैं। स्रोत और संदर्भ की दृष्टि से साठोत्तरी कविता के शब्द-संसार को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त करना समीचीन है---

१- राजनीतिक परिवेश से लिए गए शब्द

२- आम आदमी के जीवन के आसपास से उठाए गए शब्द

   क- नगर और महानगर के जीवन से सम्बन्धित शब्दावली

   ख- लोक जीवन से लिए गए शब्द

३- यौन संदर्भों से लिए गए शब्द

४- पौराणिक संदर्भों से ली गई संज्ञायें

५- तिलस्मी जासूसी तथा अन्य जीवन संदर्भों के शब्द

राजनीतिक परिवेश से लिए गए शब्द :-

साठोत्तरी कविता एक राजनैतिक आदमी की कविता है अत: उसमें राजनीतिक परिवेश से गृहीत शब्दों की प्रचुरता[1] अस्वाभाविक नहीं है। आज की राजनीतिक विसंगतियों को उघेड़ने के लिए युवा कवि एक बहुत

---

(१) अधिनायकवाद, अनशन, अहिंसा, अध्यक्ष, अनुशासन, आजादी, आईनिंस, इंदिरागांधी, कर्फ्यू, कम्यूनिस्टपार्टी, कांग्रेस, कैबिनेट, कानून, खद्दर, गरीबी, गणतंत्र, गांधी, घिराव, घोषणा-पत्र चन्दा, चुनाव, जनतंत्र जनता, जनसंघ, जवाहरलाल नेहरू, जनगणना, जुलूस, झंडा, डिक्टेटर, डी०आई०आर०, तानाशाह, तिलक, दल, देश, नारे, नागरिक, नागरिकता, नेता, प्रजात त्र, पार्टियां, पंचवर्षीय योजना, परतंत्र, पार्लियामेन्ट, पार्टीफण्ड, प्राइममिनिस्टर, प्रेसीडेन्ट, भाषण, एम० एल० ए०, एम० पी०, मतदान, मंत्री, मार्शलला, मदमकुमारी, योजना, राजतंत्र, राष्ट्रीयकरण, राजनीति, राष्ट्रध्वज, लोकतंत्र, लालबहादुर शास्त्री, लोहिया, व्यवस्था, विधान सभा, वायदे, वोट वोट विधायक, शासक, शासन, शिखर सम्मेलन, शिखरवार्ता, शिव सेना संसद, संविधान, समाजवाद, समासद, सत्तारूढ़, सैनिक शासन, संसदीय

ा ाधन, ाल हिंसा,

तेज तर्रार किस्म की भाषा गढ़ चुका है। यह भाषा बार-बार राजनीति पर विचार करती है। लोकतंत्र, प्रजातंत्र, संविधान, स्वतंत्रता, संसद, समाजवाद, व्यवस्था, देश आदि शब्द इस भाषा में बार-बार उगने वाले शब्द हैं। चुनाव, मतदान, दल-मतदाता, जुलूस, जनता, विधायक, मंत्री और हड़ताल आदि शब्दों से लेस कविता आजादी की उपलब्धियों पर बड़े ठेठ और बेबाक ढंग से विचार करती है ----

१- एक सिल की तरह कैसे गिरी है स्वतंत्रता
और पिलक गया है पूरा देश[१]

२- राजपथ की जनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और आरक्षित हूं।[२]

३- बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछें पचीसबार
क्या हुआ समाजवाद[३]

यहां तक कि अपेक्षाकृत कम आक्रामक और युवा समझे जाने वाले कवियों ने भी आज के परिवेश को इसी प्रकार की राजनैतिक शब्दावली में अभिव्यक्त किया है[४]। राजनीतिक शब्दावली के प्रयोग से जहां एक ओर भाषा ब्लेड की तरह धारदार और तीखी हुई है वहीं उसमें सपाटबयानी भी आई है। अखबारों की भाषा से मिलती जुलती इस सहज भाषा में लिखी गई कविताएँ अपनी पूर्ववर्ती हिन्दी कविता की तुलना में जनसाधारण के लिए अधिक पठनीय बन पड़ी है।

- -

(१) संक्रान्त - राजधानी -- कैलाश वाजपेयी -- पृष्ठ- ३१

(२) निषेध - वापसी -- कुमार विकल -- पृष्ठ-१६८

(३) आत्म हत्या के विरुद्ध - नयी हंसी - रघुवीर सहाय - पृष्ठ- १२

(४) लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाये
-- गर्म हवायें -- यह खिड़की, याल सक्सेना- - १५

आम आदमी के जीवन के आस-पास से उठाए गए शब्द:--

साठोत्तरी कविता किसी विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट व्यक्ति के अनुभवों की कविता नहीं है। युवा कविता के चरित्र नायक लुकमानअली मोचीराम, महगूं मुसद्दीलाल आदि जैसे अनेक मुश्किलों में तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में जीने के लिए संघर्ष कर रहे व्यक्ति हैं। स्पष्ट है कि युवा कविता मुट्ठीभर लोगों के शोषण और उत्पीड़न का शिकार बनने वाले आम आदमी की बात करती है। ऐसी दशा में भाषा में आम आदमी के जीवन के आसपास की शब्दावली का घुलमिल जाना आकस्मिक नहीं है। साठोत्तरी कविता की भाषा में इस प्रकार के शब्द दो स्तरों से आए हैं। नगर और महानगर बोध को आत्मसात करने वाले कवियों ने अपने परिवेश के शब्दों को बेधड़क औरबेझिझककविता में स्थान दिया है दूसरी ओर ग्रामीण और कस्बाईजिन्दगी से निकट का परिचय रखने वाले कवियों ने साठोत्तरी कविता को लोक-जीवन के मधुर और ताजे शब्दों से समृद्ध किया है। यदि राजीव सक्सेना, ऋतुराज, चन्द्रकान्त देवताले, जगदीश चतुर्वेदी, श्यामपरमार, गंगाप्रसाद विमल, कैलाश वाजपेयी मुद्राराक्षस- बलदेव वंशी आदि कवियों ने नागरिक जीवन के शब्दों [1] से साठोत्तरी कविता की भाषा के तेवरको गढ़ा है तो दूसरी ओर रामदरश मिश्र, जगूड़ी, घूमिल, ज्ञानेन्द्र, गोविन्द उपाध्याय,

---

(१) आफिस, कारखाना, कैबरे, कुर्सी, डाइनिंग टेबिल, मेज, सोफा, यूनीवर्सिटी, बाजार, वेश्यालय, चौराहा, टेलीवीजन, डिनर, लंच, फैक्टरी, लान, व्हिस्की, पोस्टर, संग्रहालय, सड़क, बिजली, सिनेमा, रेस्तरां, लाइब्रेरी, हड़ताल आदि।

विवेन्द्र, वेदनंदन, मुक्तिबोध, अचला शर्मा आदि कवियों का एक वर्ग लोक जीवन के शब्दों [1] से एक अपेक्षाकृत उग्र और ठेठ भाषा का निर्माण करता रहा है। दोनों प्रकार के शब्दों की संख्यात्मक तुलना की जाय तो यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं है कि कवियों का बहुमत नागरिक शब्दों से भरपूर भाषा का प्रयोग करता है परन्तु चर्चा प्राय: उन्हीं कवियों की हुई है जिनकी भाषा की जड़े नागरिक शब्दावली की कविता में स्थूल और सतही ब्यौरे अधिक हैं। रचनात्मक गहराई और सार्थक शब्दों के प्रयोग से समकालीन वास्तव से सीधा साक्षात्कार कराने की सामर्थ्य इस भाषा में नहीं है। जगदीश चतुर्वेदी और रवीन्द्रनाथ

- -

(१) अमियां, अहातों, अलगनी, अराता, अण्ट-सण्ट, अन्धड़, आवारा, उकडूं, उचक उचक्कों, ऊड़े, ऐनक, ओलम, ओक, ओघड़, आंधी, कनसरे, कनफटा, कनटोप, कनकउए, कनपटी, कण्डए, काणी, कूरकूरी, कुदाल, कुल्हणा, कुलबुलमी, कुल्हाणी, खरखरी, खटिया, खराटे, खट्ट, खपाच, खिसियाता, खुसट, खुरपी, खुदमुख्त्यार, खूटे, खोटे, खंखल, गटकते, गाड़ गुंबलक, गुत्थमगुत्था, गुण्डे, गैंतिया, गोरखधंधा, गंडासे, घग्घाड़, घसियारा, घनौचिए, घुप्प, घुसेड़ना, घाम, चरपरा, चकरबाज, चिलम, चुटिया, चैत, चंट, छराक, छनाक, छप्परों, छज्जूराम, जिन्दगानी, जुगत, झालरें, झुनझुनियां, झुटपुटे, झौंप, झींखना, झोंखर, झांक, झालों, टटपूंजियां, टण्टा, ठसाठस, ढोंगियो, ढूह, ढोंगियों, तसला, तपाक, तामझाम, ताके, तिकड़म, दढ़ियल, दवापही, दमदमात, दबोचना, देहरी, दुबकी, धकापेल, धपसट, धकियाता, धुत्त, नाक सिनकना, निहह, निहाई, निघड़क, नंग-धड़ंग, पगडंडी, पनघट, पनीली, पागुर, पिट्ठू, पिद्दी, पूनियां, पोला, पोखर, फक्कड़, फटेहाल, फावड़े, फिहास, फिचकुर, फांदना, बतियाने, बहुरूपिया, बालम, बिचौले, बांस, बुजुर्गवार, बौदापन, भकचांदर, भोंपूं, मरियल, मजीरा, मगजखप्पी, मिठबोला, मसखरा, रातबिरात, रजीदन, रांपी, रंदा, लम्बरदार, लहंगा, लल्लो-चप्पो, लुच्चे, लौंडिया, सिरफिरे, सींग, सेहत, सोहर, सिपाह, हड़िया, हथौड़ा, हवेलियां, हुज्जत, हौड़,

की निम्नलिखित पंक्तियां उपर्युक्त कथन की साक्षी हैं---

१- जीनों पर मिलते हैं लिपिस्टकों के ट्यूब
फ्रेंचलेदर के पैकिट
और शक्ति देने वालीगोलियों के कवर [1]

२- दीवारों के पिछवाड़े
कूड़ा कर्कट
फेंके हुए टूथ ब्रुश, सिगरेट की डिब्बियां
स्तैमाल किए गए ड्यूराक्स के पैकेट[2]

मुक्तिबोध और धूमिल सरीखे कवियों ने देशज क्रियाओं और संज्ञाओं के सहयोग से भाषा को शक्ति प्रदान की है। पछींटना, खटवाना, नटजाना, फलोसना आदि क्रियाएं बड़ी सहज लगती हैं और कविता के बहुत निकट होने कीगवाही देती हैं ---

१- सड़क पर आतियों - जातियों को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है [3]

२- घने अंधेरे में गन्दे नलके के नीचे
अपना लोकतंत्र पछींटना है ४

---

(१) विजय आत्मरति - 'जगदीश चतुर्वेदी' - -- पृष्ठ- ५४
(२) अकविता-१, शाम को रिज पर से--'रवीन्द्रनाथ त्यागी-- पृष्ठ- १०
(३) संसद से सड़क तक - मोचीराम 'धूमिल' -- पृष्ठ- ४३
(४) नाटक जारी है - इस तरह होना ' जगूड़ी ' -- पृष्ठ- ४१

जिस तरह सच बात गलत आदमी के मुंह से झूंठ बन जाती है उसी तरह अच्छे शब्द भी अपने दुरुपयोग के कारण अपनी अर्थवत्ता गवां बैठते हैं। भाषा को तीक्ष्ण और पैना बनाने के लिए या शब्द मैत्री[१] के जरिये अभिव्यक्ति को जोरदार बनाने के लिए लोक-जीवन के तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग संगत और उचित है लेकिन जहां इनकी फिजूल खर्ची हुई है वहां भावहीन और निरर्थक अभिव्यक्ति के उदाहरण हाथ लगते हैं ---

मोटी पनफतियां पानी के सहारे चुनी प्याज के
साबुत गन्ठे और दरोंटी चटनी ।

और

- - - - - खोचियों पे रखे
मटकन्ने चुप हैं - - - - -२

३- यौन संदर्भों से लिए गए शब्द :-

अकविता सम्प्रदाय के कवियों ने नैतिक मर्यादाओं के प्रति अपना विक्षोभ व्यक्त करने के लिए जिस शब्दावली का सहारा लिया है वह इतनी भदेस, नंगी और जुगुप्सापूर्ण है कि उनका विरोध बहुत हल्का पड़ जाता है। इन कवियों ने सेक्स, घृणा, पागलखाना, वनमानुष और शैतान जैसे विषयों पर कविताएं लिखी हैं तथा जीव और जांघ के चालू भूगोल को बार-बार रस लेकर दोहराया है। नारी - पुरुषों के गुप्तांगों, मैथुन,

- -

(१) और चिथड़े अंगरखे के साथ
खून को 'नून'
और नून को पसीना बनाती है
मैं रामा ठोकता जाता हूं

--- विचार कविता की भूमिका-- कविता का रामा- गोविन्द उपाध्याय
---- पृष्ठ- ११८ ।

(२) वही । -- पृष्ठ- १५२

गर्भाधान और गर्भपात आदि से सम्बद्ध शब्दों [1] को कविता की भाषा में लाना एक साहसिक और क्रान्तिकारी प्रयास हो सकता है लेकिन इसकी सार्थकता निश्चय ही शून्य है। कुछ शब्द-प्रयोग तो बिल्कुल अप्रासंगिक और असंगत है - - -

लड़का आंड़ ककुलाता
गिनता है पैसे दुकान के लिए
लिप्टन लाने को [2]

हर बात को यौन-क्रिया के बिम्बों और प्रतीकों के जरिये अभिव्यक्ति करने के अतिरंजित उत्साह का परिणाम यह हुआ है कि अच्छी से अच्छी बात भी बहुत भोंड़े ढंग से कही गई है।[3] कुछ स्थलों पर कविता विशुद्ध गाली-गलौज लगती है। श्रीमानंद रूपराम सारस्वत तथा सुरेश किसलय जैसे कवि ही नहीं

- -

(१) अण्डकोष, आंड़, उल्लू का पट्ठा, गर्भविवर, गाभिन, गर्भाधान, चकला, चुदाई, चूतड़, चोदते, जांघ, नंगा, फ्रेंचलेदर, भग, मैथुन, यौन, रतिक्रिया, रजस्वला, लूप, वीर्य, वीर्यपात, शीलभंग, शिश्न, स्तन, स्वप्नदोष, सहवास, संभोग, मादरचोद, साला आदि।

(२) पहचान १।३ आंख हाथ बनते हुए - सं०-क `ज्ञानेन्द्रपति`-- पृष्ठ- ३

(३) उसके गर्भाधान के रास्ते में फंसे हुए
अनेक लिपियों के सड़े हुए लूप
एक एक कर बाहर निकालते रहे
--- निषेध - वर्जित गुफाएं - परेश -- पृष्ठ- १२५
और
स्तनों को रौंदते पागल कदम
खरोंचे जख्म पर
मृत मछलियां
औरत के कटे - नुचड़े ध्वस्त अंगों पर
शिश्न की परछाइयां
--- अकविता-१, यंत्रवत - श्याम परमार - -- पृष्ठ- १४

बल्कि लीलाधर जगूड़ी और विष्णु खरे जैसे प्रतिबद्ध और जागरूक कवि भी कुछ कविताओं में इस गाली-गलौज को प्रश्रय देते हैं ---

१- बुड्ढा हो गया है साला खूसट
सह कुटुम्ब की बात करता है
बारहवीं सदी की [१]

२- इनमें से जो कुछ कवि हैं
शब्दों की चुदाई खा रहे हैं [२]

और

३- पीछे स्टूल से
चूतिया कवि को गौरव से उठा रहे हैं
समृद्धि के कीर्तन में [३]

४- और मेहनत के साथ उठते हुए वह कहता है
अच्छा, अब तुम बढ़ लो, ये मादरचोद आ रहे हैं [४]

इस प्रकार के अति साहसिक और चौंकाने वाले शब्द-प्रयोगों से किसी भी भाषा की कविता समृद्ध नहीं होगी : इनका थोड़ा बहुत अर्थ सिर्फ इस अर्थ में है कि हिन्दी कविता के शब्द-संसार को किंचित व्यापक किया है। ऐसे अधिकतर शब्दों की कविता में वृद्धि ठीक ऐसी है जैसे किसी की कृषि योग्य भूमि में दो चार बीघे बंजर जमीन का जुड़ जाना।

---

(१) अकथ - आओ मिलकर रोयें - 'ओ० रू० सा०' -- पृष्ठ- २७
(२) हलफनामा- हलफनामा बनाम आम आदमी की क्रान्ति- सुरेश किशलय --- पृष्ठ- ६५
(३) नाटक जारी है -- नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी- पृष्ठ- १२४
(४) कविताएं - दोस्त - विष्णु खरे -- पृष्ठ- १८

४- पौराणिक प्रसंगों से ली गई संज्ञाएं :-

समकालीन जीवन की विसंगतियों को उघेड़ने के लिए साठोत्तरी कवियों ने मिथकीय प्रसंगों और घटनाओं को एक नये अर्थ के साथ प्रस्तुत किया है। अत: यह अनावश्यक नहीं है कि उन्होंने मिथकीय शब्दावली[1] को भी अपनाया है। प्राय: पौराणिक नामों या संज्ञाओं को स्वयं या अपनी पीढ़ी को अतीत से काटने के लिए प्रयुक्त किया गया है। युवा पीढ़ी का कवि यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि वह 'अंधायुग' की सीमा का अतिक्रमण कर चुकी है और पिछली पीढ़ी की तरह विवश भीरु और संत्रस्त नहीं है। इसीलिए श्रीराम वर्मा जैसे कवि यह घोषणा करते हैं कि मेरी आत्मा अर्जुन से अधिक ऋजु और सुभद्रा से अधिक धारणशील और अभिमन्यु से अधिक श्रुतिधर्मा है।[2] पीढ़ियों के इस अन्तराल को अकवि समझे जाने वाले कवियों ने भी अत्यन्त स्पष्टता के साथ रेखांकित किया है।

---

(१) अर्जुन, अभिमन्यु, अनसूया, अश्वत्थामा, अक्षयवट, अहिल्या, अरुन्धति, इन्द्र, उच्चैश्रवा, एकलव्य, कच, कंस, कर्ण, कौरव, कैलाश शिखर, कुरुक्षेत्र, कुबेर, कुम्भीपाक, कृष्ण, गणेश, गरुण, गान्धारी, गीता, गोवर्धन, चक्रव्यूह, जन्मेजय, जयद्रथ, तक्षक, त्रिशूल, देवता, देवयानी, दशमुख, दशानन, दधीचि, द्रौपदी, द्रोण, दुष्यन्त, दशाश्वमेध, धर्मराज, धृतराष्ट्र, नल, नागकन्याएं, पाण्डव, परशुराम, पार्थ, बकासुर, बनवास, ब्रह्मराक्षस, भीष्म, भीम, महाभारत, मार्कण्डेय, मनु, मृग-मारीच, याकूब, राम, रावण, राधिका, राक्षस लाक्षागृह, वासुदेव, वृहन्नला, विभीषण, शिव, शंकर, शबरी, शकुन्तला-शिखण्डी, शतरूपा, समुद्रमंथन, सीता, संजय, हस्तिनापुर आदि।

(२) पहचान ३।१ - ग्रीवविच - श्रीराम वर्मा - पृष्ठ- २

रमेश गौड़ ने पुरानी पीढ़ी को धृतराष्ट्रों की पीढ़ी[1] कहकर सम्बोधित किया है जब कि श्रीराम शुक्ल जैसे कवि `मैं भग + वान श्री राम नहीं। शिश्नवान राम हूं` कहकर बड़े ही भद्दे ढंग से पुरानी पीढ़ी को अकाम और पुंसत्वहीन सिद्ध करते हैं :--

सीता, द्रौपदी, अभिमन्यु, आदि बहुत सी महाभारतीय संज्ञाएँ साठोत्तरी कविता में विद्यमान हैं। `अक्षरों का विद्रोह` में रामदेव आचार्य ने नारी को निषेधों और वर्जनाओं से मुक्त प्रेमिकाओं के रूप में देखा है और उसके लिए निर्धारित सीता तथा द्रौपदी के आदर्शों को बिल्कुल नकार दिया है क्यों कि इनके साथ `अग्नि परीक्षा` तथा `भरी सभा में नग्न होने` की क्रूर निर्मम और यातनापूर्ण स्मृतियां जुड़ी हुई हैं।२ इस प्रकार मिथकों से लिए गए शब्द थोड़े में बहुत कहने के प्रयास को सफल बनाते हैं। पौराणिक संज्ञाएँ कभी परिवेश के भयावह होने का बोध कराती हैं[3] तो कभी इन्हें व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की आधारशिला बनाया जाता है ---

वियावान दोपहरी में

---

(१) यह धृतराष्ट्रों की वह पीढ़ी थी
जो कस्तूरी मृग की तरह
सूरज को मुट्ठियों में करते हुए
सूरज की तलाश में बीत गई
पूरी की पूरी पीढ़ी
आत्मरति में रीत गई

--- निषेध- मेरी पीढ़ी : एक आत्मस्वीकृति -- पृष्ठ- १८० ।

(२) मेरे लिये नारी सीता नहीं
मुझे नहीं लेनी उसकी अग्नि परीक्षा
मेरे लिए नारी द्रौपदी नहीं
मुझे नहीं करना उसे भरी महफिल में नंगा

(३) एक काला लाल जीभ वाला बकासुर खोलता है मुंह
और लीलता है गर्दनें और कंधे और वक्ष

-- आवेग-६- डूबते इतिहास का गवाह- जगदीश चतुर्वेदी -- पृष्ठ- ३४

प्यास के मारे माँ का बुरा हाल हो गया है
और युधिष्ठिर हैरान है
जो भी भाई पानी लेने जाता है
वहीं क्यों अटक जाता है ?
'फार्मेस्ट' से मम का क्या नाता है ?[1]

राजकमल चौधरी ने मुक्ति-प्रसंग में मिथक संज्ञाओं का प्रयोग परिवेश-बोध और व्यंग्यात्मकता दोनों के सम्मिलित उद्देश्य से किया है और वे सफल भी हुए हैं। वे साढ़े दस हजार वर्षों के इतिहास की छानबीन करते हुए इस नतीजे पर पहुंचे कि सीता और अहिल्या से अब तक की सारी भ्रूण-हत्याएं हमने की हैं तथा दधीच - अस्थियों को प्रभुसत्ता के दासों की हत्या में उपयोग किया है। उन्होंने मनु-शतरूपा[2] और नृसिंह[3] जैसे पौराणिक शब्दों को भी यथास्थान प्रयुक्त किया है। पौराणिक संज्ञाओं के प्रयोगों से युवा कविता को निश्चय ही शक्ति मिली है और इनके दुरुपयोग के उदाहरण कम ही मिलते हैं। कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, दुष्यन्त कुमार तथा भारत भूषण अग्रवाल आदि कवियों ने नई कविता में पौराणिक शब्दावली के सार्थक उपयोग की परम्परा स्थापित की थी, युवा कवि उसे किंचित बदले हुए रूप में आगे बढ़ाता है।

५- अन्य संदर्भों और स्रोतों से लिए गए शब्द :-

विज्ञान जगत के अनेक आविष्कारों मंत्रों और अनुसंधानों का उल्लेख साठोत्तरी कविता में बहुत विस्तार से हुआ है। स्पष्ट है कि साठोत्तरी

---

(१) एक उठा हुआ हाथ -- परिदृश्य-१९६७, भारतभूषण- पृष्ठ- ५० ।

(२) मनु शतरूपा आंगन में सत्ता का विषवृक्ष
हमने ही लगाया है
----- मुक्ति-प्रसंग --- --- पृष्ठ- १७ ।

(३) शवदाह के लिए उपयुक्त हैं निजी सेक्टर के नृसिंहों की
जन जंघाएं
--- मुक्ति-प्रसंग --- --- पृष्ठ- १५ ।

कवि ने विज्ञान को कविता के लिए एक हउआ या पोइजन रूप में नहीं दिया है। वह विज्ञान के उत्कर्षयुग में जी रहा है अत: उपयुक्त वैज्ञानिक शब्दावली का ग्रहण अस्वाभाविक नहीं है। मुक्तिबोध से लेकर कुमार विमल और ज्ञानेन्द्रपति जैसे युवतर कवि की भाषा में विज्ञान से सम्बद्ध शब्द अच्छी खासी संख्या में मिलते हैं।[1] सबसे अच्छी बात यह है कि प्राय: परिचित संज्ञाएँ ही ली गई हैं अत: अर्थबोध में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। उदाहरण के लिए मुक्तिबोध की निम्नलिखित पंक्तियाँ ---

१- एक्सरे की फोटो में रोगजीर्ण
रहस्यमयी अस्थियों के चित्र सा विचित्र और
भयानक।[2]

२- 'इलेक्ट्रान'--रश्मियों में बंधे हुए अणुओं का
पुंजीभूत
एक महाभूत में[3]

वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग अधिकतर या तो परिवेश के भयावह होने का बोध कराने के लिए हुआ है या व्यक्तिगत बीमारियों के उपचार और निदान के बहाने आज की बीमार व्यवस्था की ओर संकेत करने के लिए हुआ है।[4] सेना और पुलिस से सम्बद्ध शब्दों को साठोत्तरी कवि ने

---

(१) अणु, अणुभट्टी, अल्कोहल, आक्सीजन, आपरेशन, इलेक्ट्रान, इंजेक्शन, ईथर, एक्सरे, एनेस्थेसिया, एल्युमिनियम, कोब्रा-क्रेट, किडनी, कैंसर, कार्बन क्रेन, ट्रान्समीटर, टेप, टेलीफोन, डाक्टर, थर्मामीटर, पोलियो, पाइथन, फ्लुओरियन, फास्फोरस, क्रेन, बेंजीन, मेगवेट, मैगनीज, यूरेनियम, रेडियम, सर्चलाइट, साइनाइड, सोडियम, सिल्वर ब्रोमाइड, हाइड्रोजन बम

(२) चांद का मुंह टेढ़ा है - मुझे याद आते हैं - पृ० ७७

(३) चांद का मुंह टेढ़ा है - मुझे नहीं मालूम - पृ० ८३

(४) - - - - - - - मस्तिष्क के
भीतर मृत मछलियों को अबेरते हुए नदी के
चढ़ते बुखार को कब तक अपनी हड्डियों के
थर्मामीटर में चुपचाप पढ़ता रहूंगा--- विचार कविता की भूमिका--पृ०६१

व्यवस्था की क्रूरता और निर्ममता को व्यंजित करने के लिए इस्तेमाल किया है।१ मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता में ब्रिगेडियर कर्नल, स्टेनगन आदि व्यवस्था के अंग बनकर आए हैं।२ पुलिस थाना और जेल जैसे शब्द साठोत्तरी कविता में प्रयुक्त हुए हैं लेकिन न्याय और अमनचैन के पहरुए के रूप में न होकर जनता के शोषक और भक्षक का अर्थ देते हैं ---

> इस दरमियान मैंने जाना
> कि जनतंत्र में बिल्कुल नया जमाना है
> नागरिकता पर सबसे बड़ा रंदा - थाना है३

साठोत्तरी कविता में कचहरी की दुनियां के बहुत से शब्द भी मिलते हैं। गांव के परिवेश में जीने वाले कवियों की भाषा में ये शब्द अधिक मिलते हैं। अकेले धूमिल की कविताओं में दो तीन दर्जन ऐसे शब्द४ आसानी से ढूंढे जा सकते हैं। काशीनाथ सिंह की यह मान्यता दमदार है कि 'धूमिल की कविताओं में कचहरी

- -

(१) अश्रुगैस, आर्टीलिरी, कप्तान, कर्नल, कमाण्डर, कारतूस, कैवेलरी, कोतवाल, कोतवाली, खुफिया, गोली, गोला, छुरा, जलपोत, जनरल, जहाज, टैंकदल, तोपें, थाना, थानेदार, पहरेदार, पुलिस, पिस्तौल, पुलिस कप्तान, पैराशूट, फौज , फौजी, बख्तरबन्द, वर्दी, बन्दूक, ब्रिगेडियर, ब्रैनगन, मार्शल, मिलिट्री, सिपहसालार, सेनाएं, सेनापति, सेनाध्यक्ष, सैनिक, संगीन संगीनधारी, हवलदार, हवाई अड्डे, हवाई जहाज, हवाई फायर।

(२) चांद का मुंह टेढ़ा है --- पृष्ठ- २५६।

(३) नाटक जारी है-- इस व्यवस्था में- लीलाधर जगूड़ी-- पृष्ठ- ४८।

(४) अंगुलियों के निशान की शिनाख्त, अर्जियां, अदालत, अपराधी, असलियत, इश्तिहार, कानून कठघरा, कारागार, खता-खिलाफ, गफलत, गवाह, गारंटी, गाल काटना, गिरफ्त, चेतावनी, चोरी, जरायमपेशा, जेल, जंजीर, जिरह, तस्कर, तफतीश, तहकीकात, दुर्घटना, नालिश, न्यायाधीश, पेशेवर, फर्ज अदायगी, बदचलन, बेकसूर, भुगतान, मसौदा, मुखबिर, मुंशी, मुजरिम, मौत दर्ज करदी गई, रक्तपात, रोजनामचा, विरासत, वारंट, वकील,

की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। कचहरी ने उसे इतने और ऐसे शब्द और मुहावरे दिये जिनसे हिन्दी कविता बिलकुल अनजान रही है।१ घूमिल ने तो कविता की व्याख्या करते हुए उसे सीधी अदालती दुनियां से जोड़ दिया है---

कविता
शब्दों की अदालत में
अपराधियों के कटघरे में खड़ेएक निर्दोष आदमी का
हलफनामा है।२

बलदेव वंशी भी अपना सही अता- पता अदालती शब्दावली में ही प्रस्तुत करते हैं---

उम्र को पकड़ने के लिए
मैं दूसरों की जेब में कैद हूं
राशन-खातों में
बिकी मेरी अहमियत
मेरा सही अता-पता है
घोषित
अपराधी के हक में दी गयी
गवाही हूं - मैं ३

ऐतिहासिक संज्ञाएं और सम्बोधन ४ तथा योग से सम्बन्धित

- -

(१) आलोचना अप्रैल-जून, १९७५ - विपक्ष का कवि घूमिल- पृष्ठ- १८

(२) संसद से सड़क तक - मुनासिब कार्यवाही - पृष्ठ- ६१

(३) दर्शक दीर्घा से - बलदेव वंशी - --- पृष्ठ- २३

(४) अकबर, अशोक, उत्तराधिकारी, कुतुबमीनार, कुमार संभव, कलिंग, कोणार्क, खैबर, गजनवी, गीता, गंगा, गालिब, चंगेजखां, जयवर्धन, जहांपनाह, टीपू सुल्तान, ताजमहल, तुलसीदास, पन्नादाई, प्रताप, पदमिनी, बलबन, बाबर, महारानी विक्टोरिया, मुमताज, मोहनजोदड़ो, यशोधरा, यमुना, रावति वाल्मीकि, शेरशाह सूरी, समुद्रगुप्त, सिद्धार्थ, सोमनाथ, हर्षवर्धन, ह्वेनसांग

पारिभाषिक शब्दावली[1] के इक्का - दुक्का उदाहरण भी साठोत्तरी कविता में उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक शब्दों का प्रयोग या तो इतिहास की बौद्धिक आलोचना के उद्देश्य से हुआ है या अप्रस्तुत विधान में इनका सहयोग लिया गया है[2]। सुरेश पाण्डेय अपनी कविता 'बन्द जिन्दगी और विद्रोह' में ऐतिहासिक संदर्भ के जरिये यह घोषणा करते हैं कि उनका साहसी व्यक्तित्व निर्वासित होते हुए भी अन्याय के सन्धि पत्र पर अपनी सम्मति नहीं देगा---

मेरा साहस
निर्वासित राणा की तरह बच्चों की
सिसकियां सुनकर
पत्नी की कृशकाया देखकर
जंगल की आतंक-पूर्ण खामोशी तथा
आरोपों प्रत्यारोपों के आक्रामक क्षणों से
घबराकर
अन्यायों के अकबर के सामने
गुनाहों के संधि-पत्र पर
स्वीकृति के हस्ताक्षर नहीं करेगा।[3]

योग साधना से सम्बन्धित कुछ शब्दों को राजकमल चौधरी ने

- -

(१) इड़ा, कुण्डलिनी, पिंगला, सुषुम्ना, षट्चक्र

(२) रजनी - रूपी पन्ना दाई
अपने जन्मा पुत्र - चन्द्र फिर सुला गगन के पलने में
चुपचाप टोकरी सिर पर रख
रवि - राजपुत्र ले खिसक गयी
--- चांद का मुंह टेढ़ा है -- डूबता चांद कब डूबेगा - मुक्तिबोध - पृष्ठ- ५२

(३) बन्द जिन्दगी और विद्रोह-- बन्द जिन्दगी और विद्रोह- पृष्ठ- ४६

अपनी वैयक्तिक त्रासदी का अहसास कराने के लिए प्रयोग किया है[१]।

यद्यपि साठोत्तरी कविता की संवेदना नागरिक है, प्रकृति-प्रेम का परिचय साठोत्तरी कवियों ने नहीं दिया है फिर भी प्रकृति के अंचल से गृहीत शब्दों की संख्या अच्छी खासी है, धरती, आकाश, नदी, गुलाब, कनेर, अमलताश, कमल, मेंहदी, बरगद, पहाड़ आदि अनेक प्राकृतिक उपादान कभी प्रतीक के रूप में और कभी किसी बिम्ब के रूप में साठोत्तरी कविता की भाषा को समृद्ध बनाते हैं। पशु पक्षियों, कीड़ों - मकोड़ों, के न सर्वाधिक संख्या में प्रयुक्त हुए हैं।२ अकविता वादी कवियों में विशेषकर जगदीश चतुर्वेदी, सतीश जमाली आदि में इन नामों के व्यौरे अधिक हैं। कहीं इनका सार्थक प्रयोग है जैसे कि मुक्तिबोध की कविता, 'दिमागी गुहा अंधकार का ओरांगउटांग' जब कि कहीं - कहीं पर केवल नाम परिगणन का खिलवाड़ देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए सतीश जमाली की यह कविता ---

चूहा, बिल्ली, कुत्ता,
हाथी, शेर, रीछ, गैंडा, बारहसिंगा

- -

(१) भस्म हो गयी सती - दहन दुर्गन्धि में धुएं में
इक्कीस साल पहले
इड़ा पिंगला सुषुम्ना मेरी जुड़वां
--- मुक्ति प्रसंग -- राजकमल चौधरी - पृष्ठ- ६

(२) अजगर, अमीबा, अबाबील, उल्लू, ऊंट, ऊदबिलाव, ओरांगउटांग, कुत्ता, कछुआ, कौवा, केंचुआ, केकड़ा, कुक्कुट, कोयल, कबूतर, खटमल, खरगोश, गधा, गिद्ध, गौरैया, गिरगिट, गिबाई, गिलहरी, घड़ियाल, घोड़ा, चमगादड़, चील, चूहा, चींटी, छिपकली, जलमुर्ग, जोंक, झींगुर, टिड्डियां, टिटहरी, हंस, ततैया, तितली, तोता, तीतर, तेंदुआ, घोंघा, नेवला, नीलकंठ, पिस्सू, बकरा, बकरिया, बनमानुष, बिच्छू, बटेर, भेड़िया, मक्खी, रीछ, लकड़भग्गा, शुतुरमुर्ग, सिंहनी आदि।

लकड़बग्घा
भैंसा, गाय, सूअर
तीतर, बटेर, कबूतर
सांप, बिच्छू, अजगर
बकरा, ऊंट, गधा, घोड़ा
मक्खी, मच्छर, खटमल, छिपकली,
तोता, मैना, गौरैया, मछली
हिरण, चीता, चील, कौवा
मोर, कठफोरे, भौंरा, सारस, तिलौरी
बत्तख, शुतुर्मुर्ग, कोयल, नीलकंठ
उल्लू, गिद्ध, मेंढ़क, चमगादड़
बन्दर, मुर्गा, खरगोश, कछुआ, मगरमच्छ
और मैं ।१

उपर्युक्त पंक्तियों को देखकर ऐसा लगता है कि सतीश जमाली पशुओं का विश्वकोष बनाने का इरादा रखते थे, खुद को उसमें सम्मिलित करके उस महत्वाकांक्षी प्रयास में सफलता प्राप्त करली है । वास्तव में इस प्रकार के प्रयास शब्दों की फिजूल खर्ची के अलावा कुछ नहीं । जहां परिवेश की घुटन और असहनीयता को उभारने के लिए पशु-पक्षियों के नामों का इस्तेमाल किया गया है वहां बात जरूर कुछ बनती दिखाई देती है ।२ तिलस्मी और जासूसी

- -

(१) अकविता-५, मानव यौन - -- पृष्ठ- ७८-७९

(२) मैं इन असहाय चमगादड़ों की सड़ांध भरी कोठरी में
पर कटे कबूतर सा फड़फड़ा रहा हूं
निरुपाय बेबस

--- विकल्प-- संहित अहं -- जगदीश चतुर्वेदी -- पृष्ठ- ४८

परिवार के कुछ सीमित शब्दों को भी परिवेश-चित्रण की दृष्टि से ही साठोत्तरी कविता में स्थान पा सके हैं।१ लीलाधर जगूड़ी ने भी तिलस्मी शब्दावली का प्रयोग२ किया है। मुक्तिबोध की 'चांद का मुंह टेढ़ा' कविता में 'एय्याशी और तिलस्मी, शब्दों के माध्यम से परिवेश की विसंगति को अच्छी तरह उभारा गया है ----

मेरों की सिन्दूरी
गेरुई मूरत के पथरीले व्यंग्य स्मित पर
टेढ़े मुंह चांद की ऐयारी रोशनी
तिलस्मी चांद की राजभरी झाइयां।३

- -

(१) एयारी - रोशनी, तिलस्मी, ढिंवतारा, खिलंतारा

(२) ढिंवं तारा
ढिंवं तारा
ढिंवं
खिलं
खिलं तारा
खिलं तारा
सट लिपटकर
दुबले
बेबरदास्त
ठनकते बसेड़े
--- नाटक जारी है -- ---. पृष्ठ- १२०

(३) चांद का मुंह टेढ़ा है - चांद का मुंह टेढ़ा है -- पृष्ठ- ३२

साठोत्तरी कवियों ने ब्रह्माण्डीय शब्द-- उल्कापिण्ड, उग्रतारा, ग्रह, नक्षत्र, तारे, चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र, शनि, बुध, राहु, केतु कौलिक आदि का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। शरीर का नखशिख वर्णन यहां पर रीतिकालीन कवियों की भांति न होकर सामयिक संदर्भ में हुआ है। अकवितावादियों की दृष्टि यदि टांग, जांघ, नाभि तथा गालों तक गई है तो प्रतिबद्ध कवियों ने पेट और मुंह को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाया है। शरीर के अंग प्रत्यंग का ऐसा रेखाचित्र शायद नये कवियों से पहले हिन्दी कविता में प्रस्तुत नहीं किया गया। अनेक बीमारियों के नाम भी साठोत्तरी कविता में मिल जाते हैं जो निश्चित रूप से कविता के शब्द-संसार की समृद्धि करते हैं।

साठोत्तरी कविता के अन्तर्गत कुछ नये विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के साथ में हुआ है। विशेषणों और संज्ञाओं का ऐसा तालमेल साठोत्तरी कविता के शब्द-संसार को तो बढ़ाता ही है भाषा की शक्ति को भी एक नया आयाम देता है। उदाहरण के लिये ---'सिलबिल्ली बीबी', आवारा अंधेरा, नंगी पगडंडी, बूढ़ा सांप, नमकीन बूंद, लुच्चे उजाले, अधनंगी शाम, व्यस्त सन्नाटा, नपुंसक हड़ताली, गोरा अंधियारा, धग्गा हदेश, दोगली परछाइयां आदि। इसी प्रकार कुछ ध्वन्यार्थक और बिम्बधर्मी शब्द यथा-- धड़ाम, बड़बड़ाना, गड़गड़ाहट, रंभाना, सड़ासड़, गजबज, गिजगिजा, पनीली, फटेहाल, कुलबुलाना आदि। साठोत्तरी कवियों ने कुछ संज्ञाओं को विशेषण, संज्ञाओं को क्रिया, विशेषण को संज्ञा आदि में बदलने का जोखिम भी उठाया है। इस प्रकार के प्रयोग इन कवियों ने भाषा को अधिक धारदार और शक्तिशाली बनाने के लिये ही किए हैं। शहदीली, मायारूप, निदियारा, कुहरीले, लहरीला, अंकुवाया, आन्दोलित, नीलायी, अलपता, हड़तालना, पहलतालना, दुबलाना, ठंडाता आदि ऐसे ही अनेक शब्द हैं। साठोत्तरी कविता का शब्द-संसार निश्चय ही अपने पूर्व की कविता से विस्तृत है। यह शब्द-संसार साठोत्तरी कविता के परिवेश और उसके सामाजिक दबाव के कारण ही इतना समृद्ध बन पाया है।

ग- भाषा की शक्ति और अर्थ-गांभीर्य

नयी कविता जिस यथार्थ को कविता बना रही थी उसके मुकाबले में उसकी भाषा बहुत नरम और ठंडी थी। उसमें अपने कथ्य को सही ढंग से सम्प्रेषित करने की शक्ति कम थी। या तो शब्द संदर्भच्युत हो गये थे या गलत शब्दों का चुनाव उस भाषा को शक्तिहीन बना रहा था। नयी कविता की भाषा एक तरह से रूढ़ हो चली थी। इससे भाषा के क्षेत्र में कविता को मुक्त कराने का कार्य कुछ युवतर कवियों ने सजगता से किया है।१ काशीनाथसिंह ने धूमिल की कविता के सम्बन्ध में लिखा है कि उनकी भाषा में शब्दों को सही संदर्भ में सही जगह पर रखा गया है और लोगों ने देखा कि सही संदर्भ पाकर वे शब्द डाइनामाइट की तरह फूट जा रहे हैं यानी कि उनमें विस्फोटक क्षमता आगई है।२ यही बात लीलाधर जगूड़ी, कुमार विमल, राजकुमार कुंभज, ऋतुराज, ज्ञानेन्द्रपति, चन्द्रकान्त देवताले, कैलाश वाजपेयी, रघुवीर सहाय आदि दर्जनों युवा कवियों की भाषा के लिए कही जा सकती है। इन कवियों की भाषा में सही और सार्थक शब्दों के प्रयोग से वह ताकत पैदा होगई है जो बोल-चाल की मामूली शब्दावली के बावजूद कविता को असरदार बनाती है। ज्ञानेन्द्रपति की निम्नलिखित पंक्तियाँ व्यक्तिगत पीड़ा और राजनीतिक सच के मिले जुले बोध को बहुत सरलता पूर्वक संवेद्य बनाती है ---

मैं यह बात बिना किसी हुज्जत के मान लूंगा
कि मेरी पसलियों के दर्द का
आजादी से कोई सम्बन्ध नहीं है
हां, मैं ठीक कहता हूं
आप एक बार कहें और मैं मान लूंगा

---

(१) पुनश्च - डा० हरिचरण शर्मा - पृष्ठ- भूमिका
(२) आलोचना- अप्रैल - जून, ७५-- विपदा का कवि धूमिल- पृष्ठ- १८

कि आपकी खाँद का भी
आजादी से कोई सम्बन्ध नहीं है ।१

हालांकि साठोत्तरी कवि को नये कवि की तरह शब्द में अधिक से अधिक अर्थ ठूंसने की जिद नहीं है फिर भी सतर्क शब्द प्रयोगों के माध्यम से कविता की अर्थवत्ता को बढ़ाने की प्रवृत्ति उसमें है । 'विष्णु खरे' की 'कार्यकर्ता' की कविता के एक उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है । कविता में एक स्थल पर 'कुत्ते से होशियार' पद का प्रयोग है ।२ स्वयं विष्णु खरे ने इसमें कुत्ते शब्द के माध्यम से तिहरे अर्थ के बोध की बात कही है । उनके अनुसार इसमें तीन कुत्तों की ओर संकेत है । पहला कुत्ता तो राजनीतिक कार्यकर्ता ही है जो निष्ठापूर्वक काम में लगा है दूसरा कुत्ता अगली कोठी का वह व्यक्ति है जो उससे उसी तरह पेश आयेगा जिस तरह कार में बैठा हुआ 'पेडीग्रीड' कुत्ता भूरे पर के देशी टीपू से पेश आता है । तीसरा वह असली कुत्ता जो बंधे होने पर कार्यकर्ता को भौंककर डराता रहेगा यदि खुला हुआ तो - - - ।[3]

यद्यपि भाषा के शब्द प्रत्येक के लिए समान हैं फिर भी स्थिति-भेद के कारण संदर्भगत अन्तर आजाता है । इस अन्तर के कारण शब्द अपना परम्परागत अर्थ या तो खो देते हैं अथवा नये संदर्भ में अपनी अर्थ-व्यंजकता तथा शक्ति का विस्तार करते हैं । उदाहरण के लिये 'औरत' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से अधिकतर उसके शरीर तक ही सीमित रहा है । समय के साथ - साथ वह 'श्रद्धा' भी बन गई परन्तु साठोत्तरी कविता में उसका स्वरूप भिन्न-भिन्न दृष्टियों में आंका गया ।साठोत्तरी कविता में

- -

(१) विचार कविता की भूमिका-- एक वक्तव्य - पृष्ठ- ११४
(२) तीन कोठियों का काम बाकी है
जिनमें से एक के दरवाजे पर 'कुत्ते से होशियार'-लिखा हुआ है
आवेग-६, १६७२ -- पृष्ठ- १०६
(३) वही । -- पृष्ठ- ११८

जहाँ अकवि 'औरत' शब्द के साथ केवल 'छेद' का ही रिश्ता पैदा कर सके हैं वहाँ वामपक्ष के कुछ समर्थ कवियों ने उसे नयी स्थिति में रखकर नये रिश्तों से जोड़ा है। 'काव्य भाषा और कला की नवीनता अपने आप में किसी वस्तु के कारण नहीं, बल्कि उसके किसी नये रिश्ते या प्रश्न से जुड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है।'[1] शब्द के साथ नये रिश्तों का कायम होना दिमागी सड़ांध पर नहीं बल्कि उसके पीछे किसी ठोस वैचारिकता का होना आवश्यक है। 'औरत' को जब समकालीन प्रश्न और परिवेश से जोड़ दिया जाता है तो वह 'औरत' 'जांघ' और 'जीम के चालू भूगोल' की सीमा में न रह कर एक ईमानदार और वास्तविक स्थिति से जुड़ जाती है----

यह औरत मेरी मां है या
पांच फीट लोहे की एक छड़
जिस पर दो सूखी रोटियां लटक रही हैं[2]

इसके आगे भी कवि किसी खौफनाक घात की ओर संकेत करते हुए कहता है---

अब मेरी कविता एक ली जा रही जान की तरह बुलाती है
भाषा और लय के बिना, केवल अर्थ में
उस गर्भवती औरत के साथ
जिसकी नाभि में सिर्फ इसलिए गोली मार दी गई
कि कहीं एक और ईमानदार आदमी पैदा न हो जाय।[3]

इसी प्रकार 'औरत' को एक भिन्न दृष्टि और उद्देश्य से जोड़कर देखने का प्रयास कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की कविता 'संसद भवन' 'भंगी कॉलोनी, और मुक्ति-गाथा' नीलम की 'युगान्त' भक्त विनायक की

- -

(१) आलोचना जुलाई, दिसम्बर, १९७५- काव्य-भाषा का वामपक्ष
कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह - -- पृष्ठ- १६

(२) वाम-३, १९७४- गोली दागो पोस्टर- आलोक धन्वा- पृष्ठ- १४

(३) आलोचना- जुलाई-दिसम्बर- आलोक धन्वा - पृष्ठ- १६

'सुपर बाजार' आदि में किया गया है। श्री हर्ष, अक्षय उपाध्याय तथा धूमिल जैसे कवियों में भी 'औरत' शब्द को एक नये अन्दाज के साथ प्रस्तुत किया गया है जिससे भाषा में अर्थ-गांभीर्य तो बढ़ा ही है साथ ही साथ उसमें कुछ नये आयाम भी आकर जुड़ गए हैं। इसी प्रकार 'लोग', 'सड़क', 'घोड़ा', 'मौसम', आदि ऐसे शब्द हैं जो साठोत्तरी कविता में विभिन्न स्थितियों में प्रयुक्त होकर अलग- अलग अर्थ का प्रस्तुतीकरण करते हैं। इससे स्पष्ट है कि युवा कवि अपने शब्द प्रयोगों के प्रति सचेत है। डा० हरिचरण ने आज के कवि द्वारा शब्दों के प्रयोग में बरती जा रही सतर्कता और जागरूकता की सराहना की है।[१]

(१) जन-भाषा का प्रयोग

साठोत्तरी कवि जनता का आदमी है इसलिए जनता से जुड़ना उसके लिए अनिवार्य कर्म बन गया है। वाम पक्षधरता के कवियों में यह बात अधिक दिखाई देती है। उसकी कविता जन-सम्बद्ध कविता है इसलिए वह जनता के जीवन - अनुभवों और मूल्यों की अभिव्यक्ति उसी की भाषा में करना चाहता है। कवि जिस सीमा तक सामान्य भाषा के खुलेपन से, विस्तार से, सच्ची जिन्दगी की समस्याओं, सरोकारों से परिचित होगा उतना ही वह अपनी भाषा अर्थात् काव्य-भाषा को जिन्दगी के निकट लाते हुए सार्थक या सक्षम बना सकेगा।[२] भाषा यदि समकालीन समाज के यथार्थ - परिदृश्य को उसी तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति करपाती है जिस तीव्रता से वह घटित होता है तो कविता की वस्तु अपना इच्छित प्रभाव पैदा करने में सक्षम होती है। कविता में जन-भाषा के प्रयोग को प्रभावशाली बनाने के लिए जन-बोलियों तथा लोक-धुनों का

---

(१) 'आज का कवि अपनी अनुभूतियों की सम्प्रेषणीयता के लिए एक भी ऐसा शब्द खरचने के लिए तैयार नहीं है जो फालतू कहा जाय। प्रभाव हृदय पर पड़े या मस्तिष्क पर एक ही शब्द में वह शक्ति हो सकती है जो उसके स्थान पर ; रखे गये शब्दों से संभव नहीं है।'

पुनश्च-- --- --- पृष्ठ- २६७

(२) कवि-कर्म और काव्य-भाषा- परमानन्द श्रीवास्तव- पृष्ठ- २

इस्तेमाल भी किया है। सिद्ध-नाथों के साहित्य से होती हुई जन-भाषा की परम्परा कबीर, जायसी, सूर, मीरा और निराला के काव्य तक आकर साठोत्तरी कविता में फिर अपना आसन जमा बैठी।

युवा कवि ने जिन्दगी से सीधे साक्षात्कार किया है। इन कवियों ने भाषा को अपने आस-पास की दुनियां, रोजमर्रा की जिन्दगी तथा मानवीय रिश्तों की सचाइयों से जोड़कर उसे जन-भाषा के करीब लाने का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने 'आत्म हत्या के विरुद्ध' संग्रह में भारतीय राजनीति तथा मनुष्य की विसंगतियों को उधेड़ा है। उनके दूसरे संग्रह 'हंसो हंसो जल्दी हंसो' में वे जनभाषा के बिलकुल सामान्य बोलचाल के रूप में मानवीय संवेदनाओं को उभारते हैं। सर्वेश्वर के 'गर्म हवाएँ' 'कुआनो नदी' में भी भाषा, जनभाषा के स्तर पर प्रयुक्त हुई है। नागार्जुन तथा त्रिलोचन में भी जन-भाषा के सही प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं।

युवा कवियों में धूमिल, वेणुगोपाल, मणिमधुकर, ज्ञानेन्द्र पति, कुमार विमल और पंकजसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने अपनी जनभाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में बड़े सार्थक तथा सटीक ढंग से किया है। वेणुगोपाल की 'जंगलगाथा' कुमार विमल की 'एक गली का अंधेरा' और 'तरक्कीराम' पंकजसिंह की 'चलो उस तरफ' राजेन्द्र प्रसाद सिंह की 'त्रिभुजाकार ढांचा' आदि कविताएँ जन-भाषा के प्रयोग की सच्ची गवाही देती हैं। जन-भाषा के प्रयोग में आवश्यक है कि शब्द थोपा हुआ तथा कृत्रिम न लगे। ज्ञानेन्द्रपति की कविता 'हड़ताल से आगे' से यह बात स्पष्ट हो जाती है---

> मैंने देखा रामेसर चुप था उसे एक बगल खींच.
> धीरे से पूछा : क्यों गुम काहे हो ? रामेसर बोला : भाय
> हड़ताल हाड़तोड़ हो गया है कल तो किसी तरह काम चला पर
> आज भोरे से किसी के मुंह में सत्तु तक नहीं गया है

हम तो ठहरे लूटो लावो कूटो खावो.
ऊपर से हड़ताल दू-दू दिन और क्या कल भी
तैस में रामेसर की आवाज तेज हो गयी: हम तो
माय अन्त तक लड़ सकते हैं पर सब मनमौजी हैं
पिछलीबार हड़ताल खट्ट से तोड़ दिया और क्या हुआ
कुछ नहीं "बात साफ है रिक्शा-ड्राइवरों का झंडा
कार वालों के हाथ में रहेगा तो सब कुछ मनमौजी रहेगा।[1]

कहीं कहीं पर जनभाषा का प्रयोग करना चाहते हुए भी कवि उतनी सफलता नहीं पा सका है जितनी उससे अपेक्षा की जाती है। जनकवि कहे जाने वाले विजेन्द्र और आलोक धन्वा की कुछ कविताएं इसका प्रमाण हैं। विजेन्द्र की कविता 'जनशक्ति' जन-भाषा के नाम पर तत्सम शब्दों की बहुलता से बोझिल हो जाती है तो आलोक धन्वा की कविता 'जनता का आदमी' और 'गोली दागो पोस्टर' में कविता की भाषा तथा शिल्प 'जन' से दूर जाकर चौंकाने वाला स्वरूप धारण कर लेता है ---

यह उन्नीस सौ बहत्तर की बीस अप्रैल या
किसी पेशेवर हत्यारे का दायां हाथ या किसी जासूस
का चमड़े का दस्ताना या किसी हमलावर की दूरबीन
पर टिका हुआ धब्बा है[2]

नन्दकिशोर नन्दन ने उपर्युक्त पंक्तियों की आलोचना करते हुए ठीक लिखा है कि 'इन पंक्तियों में चौंकाने वाले बिम्बों की समानान्तर रचना

- -

(१) आलोचना जुलाई - दिसम्बर- १९७५- --पृष्ठ १३७ से उद्धृत
(२) वाम-३, १९७४- गोली दागो पोस्टर -- पृष्ठ- ६४

या बिम्बों की विकल्पशैली द्वारा कवि जो कुछ कहना चाहता है वह सर्वजन ग्राह्य होने के बदले 'रहस्यमय' और कठिन हो गया है।"[१] कवि जब आत्मशोषण और जनसंघर्ष की करता है तथा भाषा और शिल्प के मुहाने पर कलावादी बन जाता है तब उसका दोनों में से कोई भी रूप स्पष्ट नहीं हो पाता और कवि प्रतिभा धुंधलके में भटक जाती है।

२- सांकेतिकता

युवा कविता में सपाटबयानी और साफगोई है। डॉ० गोविन्द 'रजनीश' ने जहां साफगोई को सातवें दशक की कविता की विशेषता माना है वहीं सपाटबयानी को उसकी कमजोरी कहकर सम्बोधित किया है।[२] लेकिन बहुत सी कवितायें ऐसी भी हैं जो बयान या वक्तव्य न होकर सांकेतिक हैं। राजनीतिक सच को उजागर करने वाली बहुत सी कविताओं में यह बात देखने को मिलती है। ऋतुराज कृत 'तस्वीर' चन्द्रकान्त देवताले कृत 'पोलियोग्रस्त बच्चे की सवारी' वेणुगोपाल कृत 'पावलाव और गांधी' तथा धूमिल की 'कुत्ता' जैसी कविताओं में कई तरह के संकेत उभरते हैं जो परिवेश के गैर मामूली संदर्भों और घटनाओं से सीधे जुड़े रहते हैं। वेणुगोपाल की निम्नलिखित पंक्तियां जनता को क्षणिक राहत देने वाली सरकारी योजनाओं और कार्यवाहियों की निरर्थकताओं को बहुत खूबी के साथ पेश करती हैं--

अब यह तय है कि कुछ दिन तो
छत नहीं टूटेगी। दीवारें

---

(१) आलोचना जुलाई-दिसम्बर, १९७५- समकालीन हिन्दी कविता और जनभाषा का सवाल - --- पृष्ठ-१३५।

(२) समीक्षा - मार्च- १९७३, 'सातवें दशक की कविता' - पृष्ठ- ९५

नहीं लहकेंगी
मकान - मालकिन ने मरम्मत करवायी
है। दीवारों
पर नया पलस्तर लगवा दिया है।[1]

बहुत सी साठोत्तरी कविताएँ कोरा शब्द जाल लगती हैं क्योंकि उनके संकेत पकड़ में नहीं आते। उदाहरण के लिए धूमिल की कविता में जानवर, भेड़िये, दलदल, नदी आदि शब्दों के बार - बार प्रयोग की सार्थकता तब तक नहीं समझी जा सकती जब तक कि यह नहीं जान लिया जाय कि धूमिल मौजूदा सामाजिक और मानसिक अव्यवस्था को जंगल के रूप में देखते हैं। अपनी लम्बी कविता 'पटकथा' में देश को एक विशाल दलदल के किनारे पड़ा अफरा पशु कहकर देश की गरीबी अभाव और साम्प्रदायिक संद्राव आदि की ओर एक साथ ही संकेत कर दिया है ---

लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे
बहुत बड़ा अफरा पशु पड़ा हुआ है
उसकी नाभि में एक सड़ा हुआ घाव है
जिससे लगातार - भयानक बदबूदार मवाद
बह रहा है
उसमें जाति और धर्म और सम्प्रदाय और
पेशा और पूंजी के असंख्य कीड़े
किलबिला रहे हैं - - -[2]

---

(१) विचार कविता की भूमिका - भारत १९७२ - पृष्ठ - १३०
(२) संसद से सड़क तक -- पटकथा - पृष्ठ - १३०

(३) सूक्तिमयता :-

जब व्यक्तिगत अनुभव सही भाषा में ढलकर सामान्यीकृत हो जाता है तब वह एक सामान्य कथन या सूक्ति बन जाता है। कविता में भावतत्व की प्रधानता मानने वाले विचारकों ने सूक्ति को उत्कृष्ट काव्य का उदाहरण नहीं माना है लेकिन जब आज कविता में विचार तत्व अनिवार्य हो गया है तब इस प्रकार की सूक्तियाँ भाषा के वैभव का प्रमाण देती है। साठोत्तरी कविता-सूक्तियाँ जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित हैं। कभी वे नारी और पुरुष की सम्बद्धता का आधार ढूंढती हैं।[1] तो कभी आज के व्यस्त और गतिशील जीवन का भविष्य पढ़ती हैं ---

सड़कें भी थकान रेंगती हैं
कभी कभी बहुत थक जाती है - घुटनों में दर्द उभर आता है[2]

यह आकस्मिक नहीं है कि मध्यकालीन काव्य की सूक्तियों की तरह साठोत्तरी सूक्तियों में किसी प्रकार का नैतिक कथन नहीं है आचार व्यवहार का पाठ पढ़ाने के स्थान पर ये सूक्तियां जीवन सत्य[3] का काव्यात्मक रूपान्तर कही जा सकती हैं। ऐसा भी नहीं है कि इनका सत्य सार्वकालिक हो। बहुत सी सूक्तियाँ वर्तमान के अनुभव से जुड़ी हुई हैं[4] और उनकी

- -

(१) पुरुष को स्त्री अपनी योनि से नहीं
गर्भ से बांधती है
--- कल्पना - जनवरी, १९७२ - तलहटी में संलाप -- अनुजा भारती पृष्ठ - २६

(२) विचार कविता की भूमिका - नियति विस्तार - लक्ष्मीकान्त वर्मा पृ०२२९

(३) भविष्य को अंगुली पर रखता हूं ज्योतिषी
बनिया तिजोरी में
जलसाघर -- जलसाघर - श्रीकान्त वर्मा -- पृष्ठ - १३

(४)क - अश्लील गाली एक जन्म देती है
और वापस ले लेती है
--- विकल्प - विविध -- गंगाप्रसाद - विमल - पृष्ठ - २४

ख - बहुत मजबूरी है
मगर जिन्दा रहने के लिए। कायर होना जरूरी है।
--- संसद से सड़क तक - शहर का व्याकरण - धूमिल- पृष्ठ - ६२

प्रासंगिकता आज के संदर्भ में ही है लेकिन इससे उनकी शक्ति और प्रभाव पर कोई आंच नहीं आती ।

(४) कथन की वक्रता, लोकोक्ति और मुहावरे-

बहुत सी साठोत्तरी कविताएँ सीधी और सपाट कथनभंगिमा से लैस न होकर उक्तिवैचित्र्य और लाक्षणिकता से सम्पन्न हैं । ऐसी कविताओं की भाषा अपेक्षाकृत स्वरीय और काव्यमयी है । इस प्रकार की भाषा मानव नियति के विभिन्न परिदृश्यों को उकेरने में उतनी ही सक्षम सिद्ध हुई है जितनी साफगोई और सपाटबयानी से युक्त काव्य भाषा । ऐसी भाषा में एक ओर नये और ताजे विशेषणों से युक्त संज्ञाएँ[१] हैं तो दूसरी ओर सहज ही बिम्ब निर्माण कर देने वाली क्रियाएं[२]। भारत भूषण अग्रवाल के कविता संग्रह 'एक उठा हुआ हाथ' में 'रेटारिक' का सुन्दर तथा सशक्त प्रयोग है । युवा कवि देवेन्द्र कुमार ने भी 'रेटारिक' के माध्यम से अपनी काव्य भाषा को प्रभावोत्पादक बनाया है ।---

तर्क पर खड़ी इन इमारतों का क्या भरोसा[३]

भाषा को शक्तिपूर्ण और तर्कपूर्ण बनाने के लिए युवा कवियों ने लोकोक्तियों और मुहावरों का भी इस्तेमाल किया है जो कि ऐसे स्थल साठोत्तरी कविता में कम हैं फिर भी जितने हैं वे कवि के भाषा

---

(१) पैदल लाचारियां
हांफती हैं नसीबों के दलदल में
धंसती करुण आँखें
--- विचार कविता की भूमिका -- रैन बसेरा पृष्ठ- १०५

(२) जहाज पर उछलकर
अपना दस्तखत
किया है
लहर ने
--- माया दर्पण - श्रीकान्त वर्मा - --- पृष्ठ- ६५

(३) आवेग -६ दीगर जुबान - --- पृष्ठ- ४३

पर अधिकार को प्रमाणित करते हैं प्रायः उन्हीं लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग हुआ है जो युग के तनावपूर्ण मौसम के अनुकूल पड़ते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग साठोत्तरी कविता में मुहावरों की अपेक्षा कम हुआ है। शब्द ही नहीं लोकोक्तियों को भी तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करना इन कवियों में देखा जा सकता है। --"न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी" जैसी प्रसिद्ध लोकोक्ति को भवानी प्रसाद मिश्र ने एक नये अंदाज के साथ प्रस्तुत किया है---

किन्ना नाचा हूं तुम्हारे इशारों पर
नौ मन तेल तक जुटाया है मैंने
खुद अपने ही लिए [1]

सामाजिक संदर्भ में मुहावरों का प्रयोग करने में नरेन्द्रमोहन, हरिशंकर अग्रवाल, कमलेश, रघुवीर सहाय और डॉ० महावीर दधीचि आदि की कविताओं को देखा जा सकता है ---

१- कविता चाहे चूल्हे भाड़ में जाय [2]

२- पत्थरों से टकराती है हवा
और दांत किटकिटाती हुई
कुर्सी के पाये से लिपट जाती है [3]

३- ऊंची दुकान फीका पकवान
गलत ---
नीची दुकान ऊंचा, ऊंचा बहुत ऊंचा
धार्मिक, आध्यात्मिक बौद्धिक [4]

- -

(१) अंधेरी कविताएँ - शरीर और सपने - पृष्ठ- ४५
(२) पहचान । वरत्काल - 'कमलेश' पृष्ठ- २
(३) विचार कविता की भूमिका- प्रार्थना में झुके हुए शब्दों का वर्तमान-पृ०११०
(४) अथ - डा० एस० महर्षि - महावीर दधीचि -- पृ० ११

साठोत्तरी कवियों में लीलाधर जगूड़ी ने मुहावरों का प्रयोग सर्वाधिक किया है उनकी कविता 'घर संभालते हुए' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कही जा सकती है। थोड़े से अन्तर से ही मुहावरों[1] का लगातार प्रयोग लीलाधर जगूड़ी की भाषा की अपनी विशेषता है। लीलाधरज जगूड़ी ने जहां कुछ नये मुहावरों [2] को गढ़ा है बलदेव वंशी ने वहां विद्रोह की मुद्रा में पुराने मुहावरे को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। 'हाथ धोना' मुहावरे का प्रयोग उनकी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है ---

इन मेल-भरी मरती रेखाओं में
तुम्हारा भविष्य कहीं खो गया है
तुम हाथ क्यों नहीं धोते [3]

---

(१) उसे सही ढंग से पहचानते हुए टोको
थोड़ा सा आंखों को लाल-पीली करो
तुम आदमी नहीं पाजामा हो
किधर से कहां आ रहे हो
बहुत टेढ़े हो बिल्कुल सीधे चले जा रहे हो
अगर काम बनाना है
तो अंटी ढीली करो

--- नाटक जारी है - टेलीफोन पर - पृष्ठ-६५

(२) उदाहरण के बाद जो अचानक मिल गया
उस सुग्रीव सपने को देखते हुए
मैं लौट रहा हूं

--- इस यात्रा में - मैं लौट रहा हूं - पृष्ठ-३६

(३) दर्शन दीर्घा से - पृष्ठ-८१

साठोत्तरी कवियों ने जिन मुहावरों का प्रयोग किया है उनमें से दाल गलाना, पेट उठाना, चुल्लू भर पानी में डूबना, दांत खट्टे करना, मैदान मारना, चारों खाने चित, हाथ धोकर पीछे पड़ना, आँखें लाल-पीली करना, लोहे के चने चबाना, बेड़ा गर्क होना, अंटी ढीली करना, द्रौपदी का चीर होना, गोबर करना, मरता क्या न करता, भागीरथ प्रयत्न, भाण्डा फूटना, चैन की सांस लेना, कमर कसना, लल्ली चप्पो करना, रेत फांकना, सिर धुनना, मुंह मसूरना, केंचुली उतारना, सातवां आसमान, हाथ धोना, जूते चटकाना, दांतकिटकिटाना, ऊंची दुकान फीका पकवान, ईंट बजाना, मन मारना आदि प्रमुख हैं।

५- आक्रोश और व्यंग्य की अभिव्यक्ति

वर्तमान सामाजिक ढांचे और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति बहुत जबर्दस्त आक्रोश साठोत्तरी कविता में फैला हुआ है। इस आक्रोश को व्यक्त करने के लिए उसने भाषा के विभिन्न तेवरों का इस्तेमाल किया है। आमतौर पर भाषा का मुहावरा व्यंग्य और विद्रूप से भरपूर है। भारत भूषण अग्रवाल की राय में 'इन पच्चीस वर्षों की बेचैनी और अपराध भावना से ग्रस्त मूल स्वर की अभिव्यक्ति जिस एक प्रमुख माध्यम से हुई है वह है व्यंग्य'।[१] व्यंग्य साठोत्तरी कवि के हाथों में कभी एक उस्तरा बनता है जो नकली मुखौटों, कोरे आश्वासनों और झूठी प्रतिज्ञाओं को खुरचने के काम आता है और कभी व्यंग्य एक नन्हीं आलपिन का काम करता है जो अपने परिवेश से बेखबर बौद्धिकों को जगाने के लिए चुभाने के काम आती है। इस प्रकार व्यंग्य साठोत्तरी काव्य-भाषा की अनिवार्यता बन गया है। आज का परिवेश व्यंग्य के

---

(१) धर्मयुग २५ फरवरी १९७३- समकालीन काव्य परिदृश्य-३ --- अजितकुमार --- पृष्ठ-२०

अनुकूल है ।[१] अत: व्यंग्यात्मक भाषा के जरिये आक्रोश की अभिव्यक्ति कवि संवेदना की पहचान करने में समर्थ साबित होती है । चाहे राजीव सक्सेना का यह लोम हो कि 'लोग भीड़ क्यों हैं । जुलूस क्यों नहीं बन जाते' या भारत भूषण अग्रवाल की व्यंग्यात्मक कविता 'परिदृश्य १९६७' हो, सर्वत्र भाषा राजनीतिक विसंगतियों की सीवन उधेड़ती है और परिवेश की सही तस्वीर दिखा पाने में समर्थ होती है । भारत भूषण अग्रवाल की निम्नलिखित पंक्तियाँ व्यवस्था के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग पर सीधी चोट हैं ---

संसद भवन में शहद का एक छत्ता लगा है
जिसकी मक्खियां फूलों से नहीं
घावों से मधु चूसती हैं
और रानी मक्खी कुछ नहीं करती
बस किम कोट पहनती है [२]

साठोत्तरी कविता में कुछ कवियों ने 'वाम' का मुखौटा पहनकर कविता में छद्म वाम फैलाने की चेष्टा की है । इसके फलस्वरूप कविता में अनुभव और भाषा का द्वन्द्व स्पष्ट दिखाई देने लगता है । आरोपित आक्रोश किसी भी कविता में शक्ति नहीं फूंक सकता उल्टे उसे कृत्रिम और सारहीन ही बनाता है । इस संदर्भ में डॉ० रामवचन राय का कथन उचित ही है कि 'विद्रोह और क्रान्ति के नाम पर नकली आक्रोश कविता में आया है । आज तमाम शोर - शराबे के बीच बारीकी से इस छद्म को समझने की जरूरत है । यह भाषा से शुरू होकर जीवन के कई मुहीमों पर एक साथ हावी होने लगता है । जैसे जैसे यह छद्म फैलता है, भाषा गूंगी, अर्थहीन और बेजान होने लगती है ।

- -

(१) आज के औद्योगिक सभ्यता का संत्रास, सामाजिक विषमताओं के कारण टूटने की स्थितियां, आर्थिक शोषण से पीड़ितसामान्यजन, दोहरेपन को जीने वाले लोगों का बाहरी व भीतरीपन, वैचित्र्य मूलक खोखला आदर्श, भीड़ की भागमभाग आदि सभी बातें व्यंग्य को आगे बढ़ाने के लिए अनुप्रेरित कर रही है ।--- धर्मयुग- २१ सितम्बर,१९७५, डॉ० विजयशुक्ल पृष्ठ- २०

(२) एक उठा हुआ हाथ - पृष्ठ- ५४

उसका असली चरित्र खत्म होने लगता है।[१] जहां कवियों ने जन-भाषा का प्रयोग किया है वहां भाषा को अनावश्यक आक्रामक होने से बचाया गया है। अनुभव को सीधे, सशक्त तथा संयत ढंग से कहने की रणनीति बहुत से समर्थ कवियों ने अपनाई है। मनमोहन की कविता 'रेलगाड़ी' से इस बात की पुष्टि हो जाती है। कवि ने सहज भाषा में व्यंग्य को उभारते हुए अपनी बात को सशक्त ढंग से कहा है ---

इंजन फक-फक करता है। धुंआ छोड़ता है चलता नहीं।
गाड़ी के पहिये जाम हैं। पटरी पर सरकना भी नहीं चाहते।
ड्राइवर सो कर उठता है। उठकर सो जाता है। तेवर बदलता
है। कमीज। बदलता है, इंजन बदलता है,। गार्ड तभी से
हरी झंडी दिखाता है। नतीजा कुछ भी नहीं निकलता।
यात्री डिब्बे से बाहर झांकते हैं। फिर उतर पड़ते हैं।
फिर कुछ ही देर बाद। गाली बुदबुदाते चढ़ जाते हैं।
नतीजा कुछ भी नहीं निकलता। गाड़ी के पहिये जाम हैं और।
इंजन फक-फक करता है। धुंआ छोड़ता है, चलता नहीं।[२]

इस कविता में रेलगाड़ी पूरी कौम का प्रतीक है, जाम पहिये धुंआ छोड़ता इंजन उसका फक-फक-रह जाना राष्ट्रीय प्रशासन तथा प्रगति का व्यंग्यात्मक परन्तु नग्न प्रक्षेपण है। ड्राइवर की मन: स्थिति भारतीय कर्णधारों की ओर संकेत करती है। गाड़ी के डिब्बे के यात्री सम्पूर्ण जन-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। रचना का अन्त हल्के तमाचे के साथ हो जाता है। इस तरह कवि-भाषा के संयत तथा शालीन होते हुए भी वह सब कहने में सक्षम रहा है जो उसे कहना है। सम्प्रेषण क्षमता इस कविता में आदि से अन्त तक है।इसकी सहज अभिव्यक्ति का ही यह परिणाम है।

---

(१) कलयुग १६ दिसम्बर, १६७६- आधुनिक कविता में भाषा और अनुभव का द्वन्द्व- --- पृष्ठ-२१

(२) वाम-२ जुलाई १६७२- -- पृष्ठ-२०५

भाषा को व्यंग्यात्मक बनाने के लिये कभी राजनैतिक नेताओं, साहित्यकारों के नामों का प्रयोग किया गया है और कभी शाब्दिक क्रीड़ा के द्वारा भी व्यंग्य को पुख्ता किया गया है। रघुवीर सहाय, मणिमधुकर और ऋतुराज जैसे कवियों ने नेहरू, कुथांट, लोहिया, भगतसिंह, कामराज आदि नामों का उपयोग करके एक बिल्कुल नयी किस्म की भाषा गढ़ी है जिसकी एक मात्र शक्ति व्यंग्य है ---

१- मुन्ना से बोले विनोबा से जैनेन्द्र दिल्ली में बहुत बड़ी लपसी
पकाई गई युद्ध से बदहवास
जनता के लिए लड़ो या न लड़ो [१]

२- स्वास्थ्य वर्धक होता है भूसा
सर्वत्र उपलब्ध है
बिस्मिल, भगतसिंह आजाद- सब भूसा ही
(खाते
थे। तुम भी खाओ, फांसी चढ़ो, देशभक्त
(बनो। [२]

३- ऊथांट ने अपनी कार को
ब्रेक लगाया है
सारे कमरों से सड़ांध उठ रही है
सारे अमरीका को मितली आ रही है [३]

कुछ स्थलों पर शाब्दिक खिलवाड़ करते हुए व्यंग्य पैदा करने

---

(१) आत्म हत्या के विरुद्ध - रघुवीर सहाय- पृष्ठ- २३
(२) कल्पना वर्ष १७ अंक ११- यह मुतहाघर- मणिमधुकर - पृष्ठ- ५१
(३) आवेग-६, दिनचर्या - ऋतुराज - पृष्ठ- १२

की कोशिश की गई है[1] लेकिन इस प्रकार के सफल प्रयोग कम ही हैं। जब भी कवियों ने मात्र शिल्पगत चमत्कार दिखाने के लिए शब्दों से खेलने की प्रवृत्ति दिखाई है वहां कविता अनुपस्थित लगती है ---

विद्यार्थी
या रथी
यार थी विद्या
सुनते रहे
कब तक
एक-एक अध्यापक की[2]

चन्द्रकान्त देवताले जैसे तेज और प्रतिबद्ध कवियों में भी शब्दों से खेलने की यह प्रवृत्ति मिल जाती है।[3] जिन कविताओं में आक्रोश और व्यंग्य का तालमेल है वहां यदि भाषा व्याकरण के दोषों से मुक्त नहीं है तब भी उसकी शक्ति अप्रभावित रहती है। ऐसी भाषा में निहित प्रहारक क्षमता उसका सबसे बड़ा गुण होती है। लक्ष्मीकान्त वर्मा का विचार है कि आज की कविता 'भाषा का ऐसा इस्तेमाल चाहती है जो तीव्र, तीखे, बुलेट जैसी लगें।[4] सुरेन्द्र चौधरी का

---

(१) प से प्रजातंत्र पैदा होता है
या पूंजीवाद
या पलायन
कोई नहीं जानता
--- तटस्थ- फरवरी- अप्रैल, १९७३- जयकुमार किरन - पृष्ठ- ३९

(२) ग्रीनविच - श्रीराम वर्मा - पृष्ठ- ५४

(३) नफरत
न नदी का है या नक्कू का
फ फल का है या फफूंद का
र रस का है या रण्डी का
त तराजू का है या तलवार का
--- 'निषेध' प्रजातंत्र के बुखार में -- पृष्ठ- ४७

(४) आधुनिक कवि-- लक्ष्मीकान्त वर्मा - पृष्ठ- ५६

यह कथन सम्मति की अपेक्षा रखता है कि आक्रोश की भाषा न तो पिंगल के नियम कानून मानती है और न वह मध्यवर्गीय संस्कारों से युक्त है। वह वाइलेंन्स (Violence) की भाषा है।[1] प्रहार क्षमता से सम्पन्न युवा काव्य-भाषा के जन्म की सूचना लीलाधर जगूड़ी ने अपने अंदाज में इस प्रकार दी है ---

पिता की बन्दूकों से संभव नहीं होगा
फौजी दस्ते की तरह अँधेरे में
एक भाषा लाइयां बदल रही है
और शब्दों को गोलियों की जगह भर रही है[2]

घ- साठोत्तरी काव्य-भाषा अक्षमता और दुर्बलताएँ

कुछ शब्दों कुछ खास मुहावरों और कुछ गिने-चुने सामान्यीकरणों तक सीमित रह जाना किसी भी भाषा की सबसे बड़ी दुर्बलता है। साठोत्तरी काव्य-भाषा के कवियों विशेषत: नागरिक कवियों की भाषा एक विशेष पैटर्न में ढली हुई है। थोड़ी सी हेर-फेर के साथ लिखी गई कविताएँ ऐसा नहीं लगता कि अनेक व्यक्तियों द्वारा लिखी गई हैं। डॉ० रामदरश मिश्र का यह कथन सार्थक है कि आज की कविता ने मात्र सामूहिक तौर पर एक भाषा ग्रहण की है।[3] इससे अभिव्यक्ति एकरस और प्रभावहीन होती गई। उदाहरण के लिए 'बीस साल बाद' पद को इतना दुहराया गया है कि उसका सारा अर्थ निचुड़ गया है ---

यही क्या कम है कि मैं संतमेंत में
पिछले बीस साल से दुनियां का 'महान' गणतंत्र
कहला रहा हूँ।[4]

---

(१) आलोचना पूर्णांक- ३६, 'आक्रोश की भाषा: और भाषा का आक्रोश' पृ०७६

(२) नाटक जारी है - इस व्यवस्था में - पृष्ठ- ५२

(३) आज का हिन्दी साहित्य- संवेदना और दृष्टि- पृष्ठ- ४१

(४) देहान्त से हटकर - एक नया राष्ट्रगीत- कैलाश वाजपेयी- पृ० ३६

२- बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को [१]

३- बीस साल बाद
मैं अपने आप से एक सवाल करता हूं
जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है ? [२]

४- बरसों पहले आपको इसे बता देना चाहिए था
जिसे बीस वर्षों बाद, आपसे मुझे पूछना पड़ रहा है
-- देवेन्द्र कुमार

५- और इतिहास में बीस साल का मतलब
ऐसी दीवार हो गया है
जिसके सामने विकल्प की जगह भी
सिर्फ दीवार है
-- परमानन्द श्रीवास्तव

कुछ कविताओं में पूरा वाक्य या पद भी एक जैसे मिलते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि निम्नलिखित उदाहरण अभिव्यक्ति के रूढ़ होने अथवा अनुकरण का प्रमाण है ---

आकाश का कलेवा
जल्दी अबाबील की तरह
ब्रह्माण्ड में लटक आया है
समुद्र की हांफती हुई सांसे
रेत पर बंधी कौड़ियों की तरह
बिखर गयी हैं [३]
-- चन्द्रकान्त देवताले

(१) आत्म हत्या के विरुद्ध- एक अधेड़ भारतीय आत्मा- रघुवीरसहाय-पृ०८६
(२) संसद से सड़क तक - बीस साल बाद - धूमिल पृष्ठ-२१
(३) आधुनिकता और हिन्दी साहित्य-इन्द्रनाथ मदान- पृष्ठ- ६५ से उद्धृत।

और मक्खनलाल उपेन्द्र की ये पंक्तियां ---

वह जहां खड़ा है वहां
एक सूखा रेगिस्तान है दहकता समन्दर है
और आकाश का कलेजा
जख्मी अबाबील की तरह ब्रह्माण्ड में लटक गया है[१]

लोकतंत्र, प्रजातंत्र, संविधान, संसद, समाजवाद, देश, युद्ध शान्ति, मंत्री, नेता, कुर्सी, जुलूस, भीड़, हत्या, भेड़, गिरगिट, जूता, मौसम, घोड़ा, सड़क, सांप आदि शब्दों की जुगाली साठोत्तरी कविता में भरपूर हुई है। कुछ आलोचकों ने इस अभिव्यंजना रूढ़ि को साठोत्तरी काव्य-भाषा का दूषण न मान करके इसकी वकालत की है। डॉ० गोविन्द रजनीश का विचार है कि कवि का गुस्सा वैयक्तिकता से सामूहिकता में बदल जाने से ऐसा हुआ है। यह कवि की अक्षमता न होकर कवि का वैयक्तिक और सामूहिक जिम्मेदारी को एक साथ ढोने का द्योतक है।[२]

अकविता परिवार की कविताएँ भी समानधर्मा शब्दावली में लिखी गई हैं। योनि, वेश्या, बलात्कार, मैथुन, संभोग, गर्भपात, टांग, जांघ, रानें, स्तन आदि शब्दों के प्रयोग उनके कवितानुमा वक्तव्यों को साहसिक जरूर बनाते हैं लेकिन उनकी भाषायी सम्प्रेषणीयता संदिग्ध है। बहुत कम स्थलों पर कुछ खास शब्दों या प्रतीकों की दोहराहट अखरती नहीं है। उदाहरण के लिए जगदीश चतुर्वेदी और राजकमल चौधरी की निम्नलिखित पंक्तियों में गिरगिट का प्रयोग। राजकमल ने जहां गिरगिट को एक सुविधाजीवी और अवसरवादी व्यक्ति के प्रतीक में ढाला है वहीं जगदीश चतुर्वेदी ने उसे एक आंशिक विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया है ---

एक चूहा

---

(१) किरण भर उजाले को - बाजीगर हम - पृष्ठ- १

(२) समीक्षा मार्च, १९७३- सातवें दशक की कविता- पृष्ठ- १४

नशे में
एक कहावर गिरगिट छिप गया है।[१]

एक छोटा सा गिरगिट कभी कभी मारता है मुंह और नोंच लेता है
बाल केवल कसमसाती है लाल और तन जाती हैं रानें[२]

साठोत्तरी कविता में भाषा तथा शिल्प के नाम पर खिलवाड़ के ऐसे नमूने भी मिल जाते हैं जैसे कि प्रयोगवादियों में भी नहीं मिलेंगे। 'ठोस कविता' के कुछ प्रयोग इसी सन्दर्भ में देखे जा सकते हैं। राजीव सक्सेना की 'कुर्सी' श्याम परमार की 'टोटम' तथा सौमित्र मोहन की 'पांच' कविताएँ 'ठोस कविता' के प्रमुख उदाहरण हैं। इन कविताओं में चित्रकारी अधिक है कविता नाम मात्र की ही हो सकती है। राजीव सक्सेना की कविता 'कुर्सी' में चित्रकारी द्वारा 'कुर्सी' का आकार बनाती हुई चार लाइनें फैलाई गई हैं -- 'कुर्सियों से चिपके हुए लोग, कुर्सियों पे लपके हुए लोग, व्यापक रोग, भोग-भोग रोग' इन पंक्तियों को इस प्रकार बिछाया गया है कि एक कुर्सी की शक्ल बन जाती है। दूसरा प्रयोग श्याम परमार का है। इसमें 'मैं' को ६५ बार ऐसी शक्ल में लिखा गया है कि इससे आदमी की अनुकृति उभरती है। लगता है इस 'मैं' के माध्यम से श्याम परमार ने आदमी के अहं की अभिव्यक्ति करनी चाही है परन्तु शाब्दिक खिलवाड़ और भाषा के साथ बलात्कार के अलावा यह अन्य कुछ नहीं। सौमित्र मोहन ने 'पांच' शीर्षक कविता में भी आदमी के लिए तीन आवश्यक चीजों की ओर संकेत करते हुए अपनी चित्र शैली का परिचय दिया है। अंग्रेजी के 'एल' के आकार को उभारते हुए रोज रोज शेव भाषण, और बीबी से सलाह इन तीन चीजों की ओर अपनी कविता में प्रमुख स्थान दिया है। इस प्रकार के प्रयोग भले ही चमत्कार पैदा करें अथवा कवि उन्हें कविता की चित्रात्मक शैली के अन्तर्गत रखकर सुख की सांस ले परन्तु इस तरह का शिल्प कविता में कोई महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत नहीं कर सका है।

- -

(१) अकविता-१ एक कविता ब्लेक आउट में लिखी गई-राजकमल चौधरी-पृ०१२

(२) आवेश-६, बूढ़े इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी- पृ० ३४

ऐसे प्रयोग निश्चित रूप से साठोत्तरी कविता के दुर्बल पक्ष के सबूत पेश करते हैं। जिसका न संकेत पकड़ा जा सकता है न अर्थ तथा न भाषायी संरचना।

राजनीतिक सामाजिक क्षेत्र में स्थापित व्यक्तियों के नामों और कारनामों का उल्लेख करके रघुवीर सहाय ने कुछ अच्छी कविताएं लिखी थीं और काव्य-भाषा को एक नई भंगिमा प्रदान की थी। अनेक कवियों ने इस भाषिक प्रयोग का बगैर सोचे समझे अनुकरण किया और आज नामों के प्रयोग से निरर्थक और ऊल-जलूल कविताएँ खूब लिखी जा रही हैं। ऋतुराज की कविता 'दिनचर्या' के संदर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव ने सटीक टिप्पणी की है। उनके अनुसार -- 'हेमामालिनी और ऊंथांट जैसे नामों से फायदा उठाकर जितनी कविता लिखी जा सकती थी 'आत्म हत्या के विरुद्ध' (रघुवीर सहाय) में लिखी जा चुकी - अब रघुवीर सहाय भी इस युक्ति से ही कुछ सार्थक चीजें नहीं लिख पायेंगे - क्यों कि अब यह रूढ़ि है और इसे छोड़कर ही सोचना होगा कि कविता को समसामयिक अर्थ में धारदार बनाने के लिये क्या किया जाय।'[1]

निष्कर्ष:-

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुख अनिवार्य तथा सशक्त माध्यम है। भाषा का परिवर्तन जीवन के बदले हुए यथार्थ के साथ-साथ होता रहता है। साठोत्तरी भाषा अपने युग के परिवेशगत दबाव को पूर्ण रूप से व्यक्त करती है। अत: पूर्ववर्ती कविता की भाषा से इस भाषा में अलगाव दृष्टिगत होता है। युवा कवियों की पूरी की पूरी पीढ़ी ने एक नयी भाषा के तलाशने की बात कही है/पुरानी पेशेवर भाषा जो अपना अर्थ खो चुकी है इन कवियों को स्वीकार्य नहीं। साठोत्तरी कविता का मुहावरा तेज-तर्रार सहज तथा गद्यात्मक है। सपाटबयानी तथा

---

(१) आवेग-६ कविता की चीख लेकिन स्वाभाविक कविता नहीं-पृ० १६-१७।

रैटारिक ने इसकी शक्ति को और बढ़ाया है। साठोत्तरी कविता जन-सामान्य के अनुभवों पर खड़ी है अत: इसकी भाषा में जन साधारण के करीब आने की कोशिश है।

साठोत्तरी कविता का शब्द-संसार बहुत व्यापक है। पहली बार हिन्दी कविता में अनेक नयी संज्ञाएं, आकर जुड़ीं जिनसे कविता का शब्द-संसार समृद्ध हुआ है। हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी संस्कृत तथा देशज और तद्भव शब्दों का बहुत बड़ा हुजूम साठोत्तरी कविता में विद्यमान है। साठोत्तरी कवियों ने अपने शब्द-संसार को अनेक स्रोतों यथा, राजनीतिक परिवेश, आम आदमी के जीवन, यौन-संदर्भ, पौराणिक संदर्भ तथा अन्य जीवन संदर्भों से बढ़ाया है। राजनीतिक शब्दावली को पहलीबार युवा कवियों ने कविता की भाषा में उतारा। साठोत्तरी कविता में आम आदमी की अभिव्यक्ति हुई है। अत: जनभाषा का प्रयोग इस कविता में मिलता है जो उसकी शक्ति को बढ़ाता है। सूक्तिमयता लोकोक्ति तथा मुहावरे इस भाषा की अन्यतम विशेषताएं हैं। व्यंग्य का साठोत्तरी कवियों ने अपनी बात को अधिक सार्थक और मारक शक्ति से कहने के लिए प्रयोग किया है। सामाजिक तथा राजनैतिक विसंगतियों को उधेड़ने के लिए साठोत्तरी कविता में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। कवियों के आक्रोश की अभिव्यक्ति व्यंग्य के सहारे अधिक प्रभावशाली और यथार्थ बन पड़ी है।

साठोत्तरी कवियों ने जब कभी भी भाषा के साथ खिलवाड़ करने की कोशिश की है भाषा की शक्ति में कमी आई है। कुछ शब्द साठोत्तरी भाषा में बार-बार प्रयुक्त हुए हैं तो कुछ का प्रयोग कवियों ने अनावश्यक रूप से किया है। कुल मिलाकर साठोत्तरी कविता की भाषा पूर्व की भाषा के मुखौटे को भेदकर सामने आई है जो अपने युग तथा परिवेश के अनुरूप है।